भुशुण्डी गीता

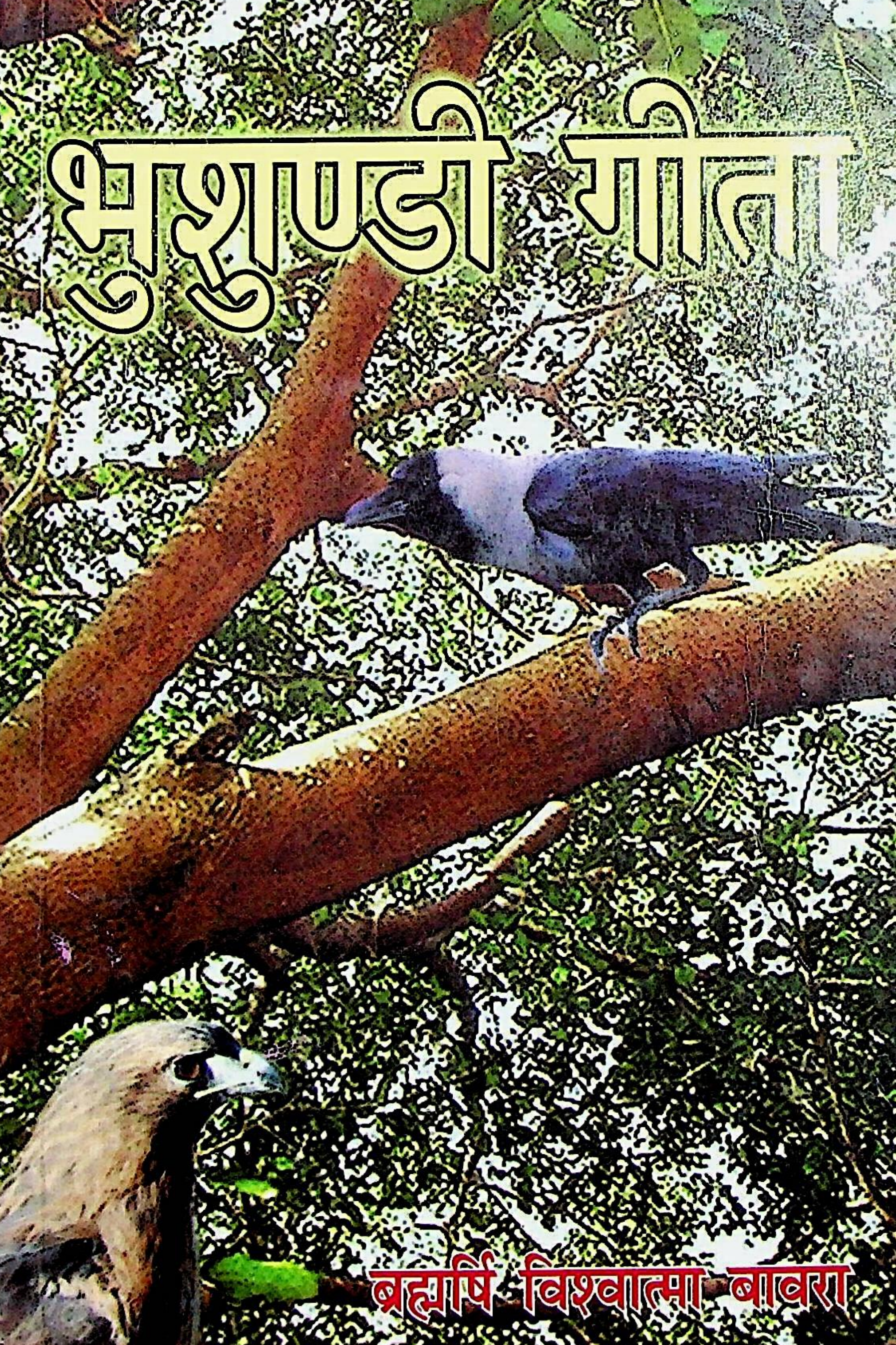

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

भुशुण्डी गीता

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट नगर,
पिंजौर, हरियाणा
फोन - 01733-266170

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733-266170

© लेखकाधीन

संकलन :- आदित्य भारती परिव्राजिका
सम्पादन :- ब्रह्मऋता परिव्राजिका

शब्द संयोजन :- *अमित शर्मा*

प्रथम संस्करण :- 3 फरवरी 2005 माघ कृष्णा नवमी सम्वत् २०६1

प्रतियाँ :- 2100

मूल्य :- ५०/-

मुद्रक :-दी प्रैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

दो शब्द

भुशुण्डी गीता काग भुशुण्डी द्वारा गरुड़ जी को दिया गया सन्देश है। ये त्रिदिवसीय प्रवचन पूज्य आचार्यश्री द्वारा हालैण्ड में दिये गये थे जिनका संकलन हमारी प्रिय आदित्य भारती द्वारा बड़े परिश्रम से किया गया है।

इस लघु पुस्तिका द्वारा पूज्य आचार्यश्री ने भी उसी प्रश्न को पुन: उठाया जो शताब्दियों पूर्व गरुड़–भुशुण्डी संवाद द्वारा सुलझाया गया था कि ज्ञान और भक्ति में क्या श्रेष्ठ है? वर्तमान में भी ज्ञान और भक्ति के आचार्य अपने मत के समर्थन में अपने तर्क प्रस्तुत करते रहते हैं, ज्ञानियों के लिए आज भी यह जगत् मिथ्या है, भ्रम है और भक्तों के लिए परमात्मा की लीला का धाम। भक्ति के आचार्यों ने ज्ञान की महिमा को अस्वीकार नहीं किया क्योंकि वास्तविक भक्ति ज्ञान–वैराग्य रहित नहीं होती और भक्ति रहित ज्ञान भी कोई अर्थ नहीं रखता। पूज्यश्री का मन्तव्य है कि ज्ञान से ही अज्ञान का नाश होता है लेकिन विद्या माया ज्ञान से नष्ट नहीं होने वाली है। उस माया से मुक्त होने का एक ही रास्ता है। गीतानाथ के शब्दों में –

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

प्रभु गीता में कहते हैं कि मेरी शरणागति के अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। साधना के तीन मार्ग हैं– ज्ञान, कर्म और भक्ति। भक्ति के परम स्वरूप को प्रतिष्ठित करने के लिए पूज्यश्री ने यह समझाने का प्रयास किया है कि ज्ञान साधना से मोह और भ्रम तो दूर हो सकता है लेकिन विद्या माया से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। भक्ति

नारी रूपा है और ज्ञान पुरुष रूप। साधना में यदि पुरुष यानी ज्ञान का आश्रय लोगे तो माया आपको दबोच लेगी क्योंकि पुरुष में अहं की प्रधानता होती है और यदि भक्ति का आश्रय लेकर चलते हैं तो प्रभु आपके रक्षक होंगे क्योंकि भक्त में समर्पण भाव होता है इसलिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति ही श्रेष्ठ है।

श्रीरामचरितमानस जैसे सरस ग्रन्थ द्वारा ज्ञान ग्रन्थि को सुलझाने का पूज्यश्री का यह प्रयास अपने आप में अद्वितीय है, अनुपम है। विश्वास है जिज्ञासु पाठकों को इससे ज्ञान और भक्ति के वास्तविक स्वरूप को समझने वा जीवन में अपनाने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

अन्त में अपने परम वन्दनीय अर्चनीय गुरुदेव के श्रीचरणों में यह लघु ग्रन्थ समर्पित करते हुए –

ब्रह्मऋता परिव्राजिका

21–1–2005 प्रचारिका इंटरनैशनल ब्रह्मर्षि मिशन

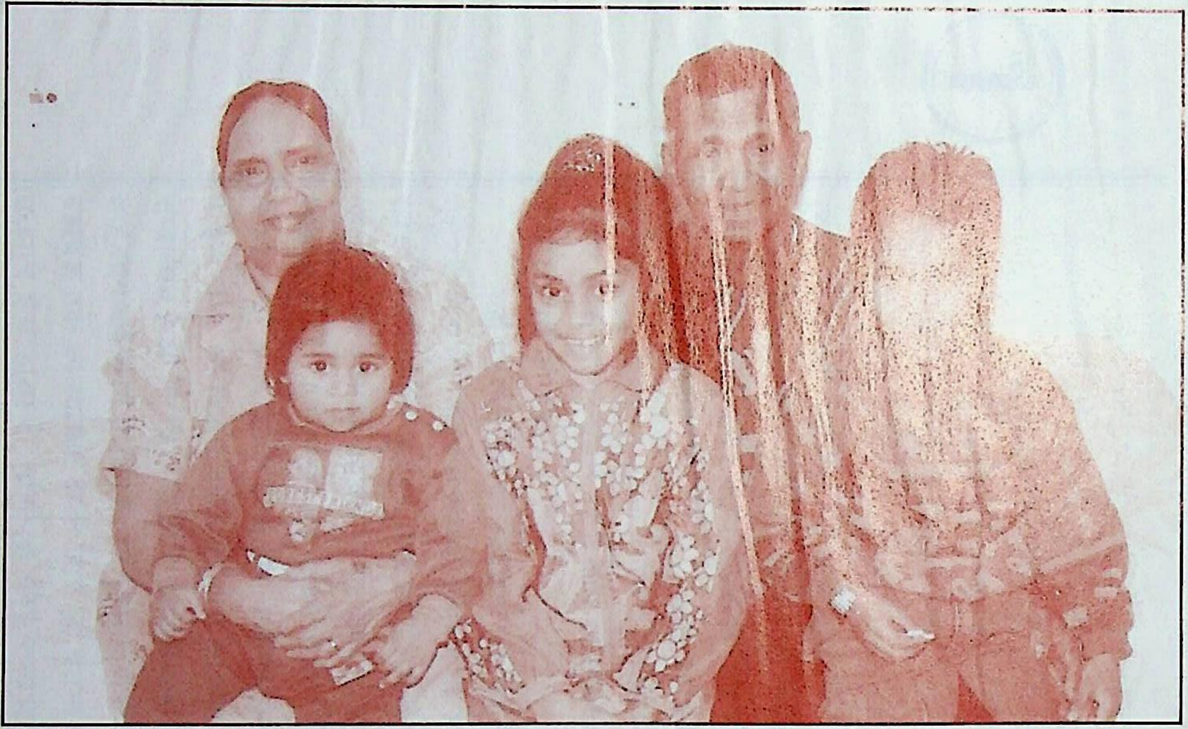

हालैण्ड निवासी श्रीमती कमलावती खेदु ने इस पुस्तक की छपाई में आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

1

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याणप्रद हो, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। अब की दो वर्ष बाद आप सभी से मिले हैं। जीवन तथा उसके प्रयोजन के विषय में विचार विमर्श करेंगे। पिछले वर्ष मैं कार्य की अधिकता के कारण नहीं आ सका।

यहाँ पर तीन दिन का कार्यक्रम रखा गया है। भुशुण्डी गीता मेरे विचार से सम्पूर्ण रामायण का सार सर्वस्व है। यदि सही में मुझे पूरी गीता पर बोलना हो तो महीनों भी कम हैं क्योंकि यह बड़ा गम्भीर विषय है। ज्ञान, भक्ति और योग– ये परमात्मा तक पहुंचने के लिए तीन मार्ग हैं। हमारे औपनिषदिक ग्रन्थों तथा दार्शनिक ग्रन्थों में इन तीनों का विशेष वर्णन है। योग साधना से सम्बन्धित है जो कि किया जाता है, जिसके कहने से कोई लाभ नहीं करने से लाभ है। हम मूलाधार से लेकर ब्रह्मचक्र तक की व्याख्या करते जाएँ कि चेतना का उत्थान ऐसे होता है, योगी के लिए सम्प्रज्ञात,

भुशुण्डी गीता -6

असम्प्रज्ञात समाधि क्या है, कैसे उसकी अनुभूति होती है, इन सारी व्याख्याओं से आप लोगों को कोई लाभ नहीं होने का,करने से लाभ होता है, सुनने से नहीं क्योंकि योग क्रियात्मक है। गोस्वामी जी का यह कथन है–

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

(रा0 3/16–1)

वेद का यह दिव्य संदेश है कि धर्मानुष्ठान करने से व्यक्ति को वैराग्य प्राप्त होता है। वैराग्यवान् व्यक्ति योग की साधना में प्रवृत्त होता है। जब तक आप विषयों से स्वयं को विरत नहीं करेंगे तब तक योग की साधना नहीं होगी। जीवन के दो मार्ग हैं भोग और योग। भोग से विरत व्यक्ति ही योग कर सकता है। या तो आप भोग कर सकते हैं या योग कर सकते हैं। धर्मानुष्ठान के द्वारा जब व्यक्ति वैराग्य को प्राप्त हो जाए, उसके पश्चात् वह योग में प्रवृत्त होता है। यह ज्ञान योग से ही प्राप्त होता है भोग से नहीं, भोग से तो रोग की प्राप्ति होती है। 'भोगेरोगभयम्' भोग से रोग का भय है और योग से ज्ञान की उपलब्धि होती है और व्यक्ति आत्मस्थ होता है, चित्त और चिति के भेद को जानता है तथा 'सत्त्व पुरुषयोः अन्यथा ख्याति' का बोध होता है। यथार्थ ज्ञान में योग ही कारण है। जो ज्ञान योग के अभाव में प्राप्त किया जाता है वह पुस्तकीय ज्ञान कहलाता है। वह ज्ञान आपके कल्याण में हेतु नहीं होने का। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा है –

बाक्य–ग्यान अत्यन्त निपुन भव–पार न पावै कोई।
निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह, तम निबृत्त नहिं होई।

(वि0प0 123/2)

अंधेरी कोठरी में बैठकर बिजली का प्रादुर्भाव कैसे होता है, उसको केन्द्रित कैसे किया जाता है, उसको तारों द्वारा कैसे लाया जाता है, उसमें बल्ब लगा देने से कैसे प्रकाश होता है, आप यदि इसकी व्याख्या करते रहें तो अंधेरी

कोठरी में प्रकाश नहीं होने का ठीक उसी प्रकार से जैसे बिजली, दीपक तथा सूरज की व्याख्या करने से अंधेरे में प्रकाश नहीं होने का। वो तो उसको Practical रूप में लाने से ही प्रकाश होता है। इसी रूप से गोस्वामी जी कहते हैं कि जो लोग ज्ञान की, आत्मा–अनात्मा की और चित्त–अचित्त की बातें किया करते हैं वहाँ तत्त्वज्ञान का उदय नहीं होता। तत्त्वज्ञान का उदय तो योग के द्वारा ही हुआ करता है इसलिए उनका कथन है–धर्म से वैराग्य होगा, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान। जो ज्ञान योग से प्राप्त होता है वही मोक्ष में हेतु होता है। पुस्तक द्वारा मिला हुआ ज्ञान मोक्ष में हेतु नहीं होता। उसके लिए आचार्य शंकर ने विवेक चूडामणि में लिखा है कि जो लोग तत्त्व का बोध प्राप्त नहीं किए, केवल शास्त्र पढ़कर ज्ञानी बन गए हैं, ऐसे लोग मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते :–

वाग्वैश्वरी शब्दझरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्‌भुक्तेय न तु मुक्तये।।

(वि0चू0 – 60)

जो लोग शास्त्र का मनन किए हैं और वैरागी वाणी से बड़ी सुन्दर व्याख्या कर लेते हैं, ऐसे लोग दुनिया में भोग को तो प्राप्त कर सकते हैं लेकिन मोक्ष नहीं क्योंकि विद्वान् को समाज आदर देता है और उसे भोग की साम्रगी भी दे देता है। मोक्ष के लिए तो योग–जन्य ज्ञान की आवश्यकता हुआ करती है। इसलिए पहले योग हो फिर ज्ञान और फिर मोक्ष। ज्ञान और योग दोनों मोक्ष की प्राप्ति के साधन हैं। वेद में कहा गया है –

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

(श्वेता0 1/3)

ध्यान और योग के द्वारा ही उस परम तत्त्व की अनुभूति होती है। अनुभूति ही मोक्ष में कारण हुआ करती है :–

भुशुण्डी गीता -8

ऋते ज्ञानात् न मुक्ति।

वेद की यह घोषणा है। योग और ज्ञान का परिणाम होता है मोक्ष, एक मार्ग यह हैं। रामायण में ऐसे महापुरुषों के दर्शन होते हैं जो मोक्ष को तिरस्कृत दृष्टि से देखते हैं और प्रार्थना करते हैं –

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।

(रा0 2/204)

हे प्रभो! हमें अर्थ नहीं चाहिए, धर्म नहीं चाहिए, काम नहीं चाहिए और मोक्ष नहीं चाहिए। मोक्ष की भी उन्हें जरूरत नहीं है। फिर वो क्या चाहते हैं ? वो जन्म–जन्मान्तर तक प्रभु के चरणों का अनुराग चाहते हैं। जो मोक्ष को तिलांजलि दे करके प्रभु के चरणों में अनुराग के लिए लालायित रहते हैं, उनको भक्त कहते हैं। तुलसीदास जी ने कहा कि भक्ति का मार्ग योग और ज्ञान के मार्ग से भिन्न है। तुलसीदास जी ने उसकी महिमा का गान करते हुए कहा कि जो इसके मर्मज्ञ हैं वही इसकी विवेचना कर सकते हैं।

रामचरित्रमानस एक अद्भुत ग्रन्थ है। कुछ दिनों से मैंने उसके ऊपर एक दूसरी दृष्टि से चिन्तन करना आरम्भ किया है। हमारे यहाँ रामायण से पूर्व बहुत से शास्त्र थे जिन्होंने तीन मार्ग प्रशस्त किए हैं– कर्म, उपासना और ज्ञान। वेद का सिद्धान्त भी यही है– कर्म, उपासना और ज्ञान। इन तीनों के द्वारा ही मनुष्य अपना उत्थान करता है। वेद का यह कथन है कि जीव के चित्त के ऊपर तीन प्रकार के व्यवधान हैं – मल, विक्षेप और आवरण। सत्कर्मानुष्ठान से मल का नाश होता है, भगवान् की उपासना से विक्षेप का नाश होता है तथा चित्त एकाग्र होता है और ज्ञान के द्वारा आवरण नष्ट हो जाता है। ज्ञान के प्रकाश में आवरण नहीं रहता। जहाँ पर मल, विक्षेप और आवरण नहीं है, वहीं मोक्ष है। वहाँ जीव अपने सहज स्वरूप का अनुभव करके मुक्त हो जाता है। वेद का यह निर्देश कर्म, उपासना और

ज्ञान से सम्बन्धित है। हमसे पूर्व के आचार्यों ने उसे अपने जीवन में उतारा और इसका प्रकाश किया लेकिन कालान्तर में आकर के एक और दिव्य मार्ग भारत में प्रकट हुआ। वह मार्ग क्या था? उसको कहते हैं वैष्णव मार्ग। यह वैष्णव मार्ग भक्ति मार्ग का अवराधक है अर्थात् भक्ति मार्ग का अवलम्बन लेकर चलने वाला है। यह इस त्रयी मार्ग से अर्थात कर्म, उपासना और ज्ञान से भिन्न है। यह वेद का त्रयी मार्ग है। आप लोगों ने यदि शिव महिम्न स्तोत्र पढ़ा हो जिसके लेखक पुष्पदन्ताचार्य हैं तो आपको संकेत मिलेगा –

त्रयी सांख्यं योगं पशुपती मतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने।

ये इतने मार्ग परमात्मा की तरफ जाने के लिए उस समय प्रचलित थे। कौन–कौन से? त्रयी, सांख्य, योग, पशुपती और वैष्णव मत। ये पांच मार्ग उस समय थे जब पुष्पदन्ताचार्य ने अपनी रचना की थी। हमारे यहाँ शास्त्रों में इनका वर्णन है। इस वैष्णव मार्ग को भागवत धर्म कहा गया वैदिक धर्म नहीं! इसके प्रथम प्रचारक हुए भगवान् नारायण जिन्होंने नारायण ऋषि के रूप में अवतार लिया था।

आप लोगों ने सुना होगा कि हमारे यहाँ जो सबसे बड़ा तीर्थ स्थान है उसको बद्रीनारायण कहते हैं। चार धामो में मुख्य धाम बद्रीनारायण है। बद्रिकाश्रम वह स्थान है जहाँ धर्म और कीर्ति के माध्यम से वह परमात्मा नर और नारायण के रूप में अवतरित हुए थे। नारायण ऋषि भी कहलाए और नारायण परमात्मा के अवतार भी थे। बद्रीनाथ में नर और नारायण दोनों भाईयों की मूर्तियाँ हैं। वहाँ पहाड़ हैं नर और नारायण जहाँ दोनों भाई तपस्या करते थे। नारायण ऋषि ने जिस धर्म का श्रीगणेश किया उसको भागवत धर्म कहते हैं।

भागवत धर्म में त्रिपुटी नहीं है कि यह कर्म है, यह उपासना है और यह ज्ञान है, ऐसा अलग–अलग उसमें नहीं है। परमात्मा की आराधना में कर्म, भाव तथा ज्ञान तीनों शामिल हैं। बिना ज्ञान के, बिना प्रेम के तथा बिना कर्म

के आराधना नहीं हो सकती। इस भागवत धर्म के मूल ग्रन्थ हैं श्री मद्भागवत, भगवंद्गीता, रामायण, महाभारत तथा उपनिषदें। उपनिषदें इस भागवत धर्म की मूलाधार हैं। मूलतः इनमें से महानारायणों उपनिषद् को प्रारम्भिक उपनिषद् मानते हैं। कुछ महापुरुषों ने श्वेताश्वतरोपनिषद् को भागवत धर्म का मूल उपनिषद् कहा है। ज्ञान, कर्म और प्रेम को अलग–अलग नहीं बल्कि तीनों के संघटित स्वरूप को लेकर परमात्मा की शरण में जाना चाहिए। भागवत धर्म कहता है कि मुक्ति तो भागवत धर्मानुयायी के लिए एक घेलुआ (बक्शीष) है। मुक्ति तो भक्तों को बक्शीष रूप में मिल जाती है यानी मुफ्त में मिल जाती है। मुक्ति के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। मुक्ति के लिए उनके यहाँ कोई स्थान नहीं है। एक भक्त ने तो यहाँ तक लिखा है कि मुक्ति एक दिन भगवान् के पास जाकर प्रार्थना करने लगी कि भगवन्! आपके निर्देशानुसार मैं असंख्य पापी जीवों को मुक्त किया करती हूँ लेकिन मेरी मुक्ति भी कहीं हो सकती है? मेरी मुक्ति कहां होगी, उसके लिए कोई स्थान बताईए –

मुक्ति कहे गोपाल से मेरी मुक्ति बताए।

हे भगवन्! मेरी मुक्ति का कोई साधन बता दो जिससे कि मैं मुक्त हो जाऊँ। भगवान् ने कहा कि तुम भक्तों के चरणों में चले जाओ। जहाँ भक्त बैठे हुए हों, जहाँ भगवान् की आराधना करने में भक्त निरत हों, वहाँ चली जाओ। वह भक्त का स्थान कौन सा है? कहा कि वह ब्रज है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण के सिवाय कुछ जानता ही नहीं, कृष्ण के सिवाय कुछ मानता ही नहीं। यदि तुम ब्रज में गई और ब्रज की धूल उड़ करके तुम्हारे पर पड़ गई तो तुम्हारी भी मुक्ति हो जाएगी। गोपाल ने कहा कि –

ब्रजरज उड़ सर पर पड़े मुक्ति मुक्त हो जाए।

मुक्ति तुम्हारी मुक्ति ब्रज में जाकर होगी जहाँ के लोग कृष्णमय हैं। प्रभु के भक्तों के लिए प्रभु से बड़ कर और कोई प्राप्तव्य नहीं होता। वो मोक्ष नहीं

चाहते। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है –

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।।

(रा0 6/112–7)

सगुण उपासक मोक्ष नहीं लेते। उनको भगवान् अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। उन्हें भगवान् अपना प्यार प्रदान करते हैं।

श्रीमद्भागवत में बड़ी सुन्दर कथा आती है कि पूतना अपने स्तन पर ज़हर लगाकर भगवान् के पास जाती है। वह नन्दरानी से छल से कन्हैया को गोद में ले जाती है और भगवान् को विष भरा दूध पिलाने लगती है। भगवान् उस मायावी को जानते हैं इसलिए दूध के साथ उसके प्राणों को भी खींच लेते हैं। जब वह मर जाती है तो भगवान् उसको अपने धाम भेज देते हैं अर्थात् मुक्ति प्रदान कर देते हैं। जब मुक्ति प्रदान करते हैं तो देवता लोग आकर के प्रार्थना करते हैं – भगवन्! यह क्या किया आपने? विष दे करके आपको मारने के लिए आई हुई पूतना को यदि आप मोक्ष दे दिए तो जिन नन्दरानी की सेवा से आप कृतकृत्य हैं, जिन गोपियों के साथ आप घूमते–फिरते हैं, जिन ग्वाल–बालों के साथ आप नाचते–गाते, क्रीड़ा करते हैं, उन्हें आप क्या देंगे? भगवान् मुस्कराते हैं। भगवान् कहते हैं अरे देवताओ! जिनका मैं दास बना हूँ, जिनका मैं स्वयं पुत्र बना हूँ, जिनके सामने मैं शिशु बनकर के एक चुल्लू छाछ के लिए, दही के लिए हाथ फैलाता हूँ, अब इससे बड़ी चीज़ उनके लिए देने को क्या रही है? मैं मुक्ति तो राक्षसों को भी दे देता हूँ लेकिन अपने भक्तों को मैं मुक्ति नहीं देता। उन्हें तो मैं अपने आपको ही दे देता हूँ। प्रभु जिस भक्ति से द्रवित हो करके स्वयं को दे देते हैं वे प्रभु के भक्त मुक्ति नहीं चाहते।

ज्ञान के बल से मोक्ष पाना, ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग करना, योग की प्राप्ति के लिए वैराग्य करना और वैराग्य की प्राप्ति के लिए

धर्मानुष्ठान करना, यह वैदिक मार्ग है। वैष्णव मार्ग में, वैष्णव धर्म में, भागवत धर्म में इसके लिए कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि कोई इस मार्ग से चलना चाहे तो यह भी सही मार्ग है लेकिन इस से भी उत्तम एक और मार्ग है। वह कौन सा मार्ग है? कहा कि वह भक्ति का मार्ग। वह ज्ञान तथा योग दोनों से श्रेष्ठ मार्ग है।

इन दोनों मार्गों का एक–एक करके निरूपण करना बड़ा मुश्किल था। गोस्वामी जी ने अपनी रामायण की रचना से पूर्व तत्कालीन स्थिति को समझा। एक तरफ तो नाथपंथी योगियों का प्राबल्य था जिसको सुन करके गोस्वामी जी खीझ भी जाते थे क्योंकि नाथपंथी अलख निरंजन–अलख निरंजन करते घूमते थे। एक नाथपंथी आया और उनकी कुटिया के बगल में उसने अलख निरंजन कहा। गोस्वामी जी निकल कर बाहर आ गए, उन्होंने उसे संकेत करते हुए कहा कि पहले तुम अपने को देखो, जो तुम्हारा है उसे देखो, यथार्थ में जो तुम हो उसको देखो फिर हम और हमारे दोनों के बीच में जो माया है, उसको देखो फिर अलख निरजन की बात करना। यदि इन पांचों को तुम नहीं देख सकते तो अरे नीच बुद्धि वाले, तू अलख–अलख क्या कहता है? तू फिर राम नाम का जप किया कर, इससे तुम्हारा उद्धार होगा। तत्कालीन अवस्था में जहाँ एक तरफ नाथ योगियों का प्रभाव था वहाँ दूसरी तरफ़ वैदिक कर्मकाण्डियों का भी प्रभाव बड़ा। कर्मकाण्डियों से तुलसीदास जी बड़ा खीझते थे। उनकी दृष्टि में कर्मकाण्ड बड़ा निस्सार था, व्यर्थ था तथा निष्प्रयोजन था। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा है कि कर्मकाण्ड बड़ा जंजाल है। यह जंजाल मनुष्य को बंधन में ही डाल देता है। इससे मुक्ति का रास्ता नहीं निकल पाता। उन्होंने विनय पत्रिका में इसकी तिरस्कृत भाव से बड़ी अवहेलना की है –

पायेहि पै जानिबो करम–फल भरि–भरि बेद परोसो।

(वि0प0 173/2)

कहा कि जो तुम इस कर्मकाण्ड में लगे हो इसका फल तो मरने के बाद तुम्हें मिलेगा।

बहु मत मुनि पंथ पुराननि जहाँ–तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम–भजन नीको मोहिं लगत राज–डगरो सो।।

(वि0प0 173/5)

गोस्वामी तुलसीदास जी भक्ति के प्रचारक थे। उन्होंने कहा कि यह कर्मकाण्ड का रास्ता तुम्हें कुछ देने वाला नहीं है। कर्मकाण्ड कुछ नहीं देगा तो ज्ञान काण्ड दे देगा? कहा– भाई! ज़ब तक चित्त शुद्ध नहीं होगा तब तक ज्ञान कहाँ से होगा? उन्होंने आगे लिखा है –

बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।।

(वि0 प0 173/4)

कहा कि यदि कच्चे घड़े में पानी डाल दो तो वह गल जाता है। यदि पक्के घड़े में पानी डालो तो पानी टिका रहता है। जैसे कच्चे घड़े में पानी डालने पर घड़ा टूट जाता है ऐसे बिना चित्त शुद्धि के यदि तुम सन्यास का ढोंग करोगे तो तुम्हारी भी वही दुर्गति होगी। उन्होंने कहा कि यह मार्ग भी ठीक नहीं है। क्या फिर ज्ञान मार्ग ठीक है? वेद प्रतिपादित है इसलिए गलत नहीं हो सकता लेकिन उसकी साधना करने वाले तुम कितने लोग हो? बड़ा मुश्किल मार्ग है। पहले तो यज्ञ कर्मानुष्ठान ही मुश्किल है, निष्काम कर्म भी मुश्किल है, वह कहीं सध जाए तो वैराग्य होगा। वैराग्य से फिर योग में लगे, योग का मार्ग भी कठिन है। यदि यह सध जाए तो ज्ञान मिलेगा। ज्ञान भी जब परिपक्व होगा तो मोक्ष मिल जाएगा। यह मार्ग है इसमें कोई संदेह नहीं। तुलसीदास जी ने कहा कि ज्ञान और योग, इन दोनों से श्रेष्ठ एक तीसरा मार्ग है जिसको उन्होंने भक्ति मार्ग कहा।

एक बात याद रखना कि वेद में जो उपासना शब्द है वह यहाँ भक्ति नहीं है। कुछ लोग भ्रम में पड़ कर उपासना और भक्ति को एक मान लेते हैं।

वैदिक उपासना अलग चीज़ है और वैष्णव सिद्धान्त की भक्ति बिल्कुल अलग चीज़ है। मैं इन तीन दिनों में इसका विश्लेषण करूंगा।

तुलसीदास जी के सामने प्रश्न है कि ये जो तीन मार्ग हैं, इनका समन्वय कैसे हो अर्थात् ये तीनों एक साथ कैसे हो जाएं। अपनी रामायण की रचना से पूर्व उन्होंने योजना बनाई। तीनों मार्गों के तीन महाचार्य हुए हैं। रामायण में तुलसीदास जी ने उन तीनों महापण्डितों को एक लाईन में लाकर खड़ा कर दिया है। अपनी रामायण की रचना का प्रारम्भ उन्होंने किया प्रयागराज से। कुम्भ का पर्व लगा हुआ था। उसमें ऋषि आए। याज्ञवल्क्य ऋषि के चरणों में नतंमस्तक होकर के भरद्वाज जी प्रार्थना करते हैं कि राम कौन हैं, आप मुझे समझाईए। यहाँ से कथा शुरु करते हैं।

यदि गोस्वामी जी के दिमाग मे कोई योजना न होती तो यहीं से वो रामायण की पूरी कथा कहला देते परन्तु उनकी योजना है। याज्ञवल्क्य हमारे यहाँ वैदिक कर्मकाण्ड के महान् आचार्य हैं। इनके द्वारा बनाई गई पद्धतियां ही कर्मकाण्ड के विधान में प्रयुक्त होती हैं। इनसे बड़ा कोई वैदिक कर्मकाण्ड का ज्ञाता नहीं है और इनसे बड़ा कोई वैदिक तत्त्वज्ञान का भी ज्ञाता नहीं। बृहदारण्यकोपनिषद् इनके ज्ञान से ही भरा हुआ है। इस प्रकार एक तो गोस्वामी जी ने याज्ञवल्क्य को लाकर बिठाया और भरद्वाज जी से प्रश्न करवाया।

उस समय ज्ञान काण्ड का जो प्रचार था वह शंकर सम्प्रदाय का था जिसमें यह था कि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' यह जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है के ज्ञान से तुलसीदास जी खीझे हुए थे। वो कहा करते थे –

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात।।

(रा0 7/99 क)

इन ब्रह्मज्ञानियों से भगवान् ही बचाएं। जहाँ कोई काम करने की बात होतीहै तो हम भी ब्रह्म हैं तुम भी ब्रह्म हो। जहाँ स्वार्थ आता है तो एक कौड़ी के लिए अपने गुरुओं का भी वध करने में पीछे नहीं रहते। ये ब्रह्मज्ञानी नहीं भ्रमज्ञानी हैं। तुलसीदास जी ने कहा कि उस ब्रह्मज्ञान के महान् आचार्य भगवान् शंकर हैं इसलिए उन्होंने अपनी उस कथा में याज्ञवल्क्य को ले जाकर भगवान् शंकर के साथ जोड़ा। जब भरद्वाज जी ने याज्ञवल्क्य जी से पूछा कि राम कौन हैं, आप मुझे बताईए तो याज्ञवल्क्य जी ने सीधी राम कथा न कह कर भरद्वाज जी से कहा –

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी।
महादेव तब कहा बखानी।।

(रा0 1/47–8)

जैसे तुम संशय कर रहे हो ऐसे कभी भवानी ने भी संशय किया था। तब महादेव ने उस राम तत्त्व की महिमा का गान किया था। महादेव जी ने क्या बताया था, अब महादेव की कथा शुरु हो गई। महादेव की कथा में महादेव का विवाह आदि सब कुछ करके अब वहाँ एक योजना बनाई कि महादेव की परम प्रिया भगवती उमा स्वयं भगवान् शंकर के बगल में बैठकर पूछने लगी भगवन्!

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनँग आराती।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई।
की अज अगुन अलखगति कोई।।

(रा0 1/108–7,8)

आप भी रात–दिन राम–राम जपते रहते हैं, वो राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र ही हैं या कोई और दूसरे अलग राम हैं? भगवान् शंकर मुस्कराए और उन्होंने कहा कि जैसे तुम मुझ से प्रशन कर रही हो ऐसे –

भुशुण्डी गीता -16

ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।

(रा0 7/55)

बिहंगपति गरुड़ जी ने कागभुशण्डी से प्रश्न किया था कि यह राम कौन हैं? पार्वती को एक और संदेह हो गया कि भगवान् के वाहन गरुड़ को संदेह हो गया? उसको हैरानी हुई और कहने लगी –

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी।।
तेहिं केहि हेतु काग सन जाई।
सुनी कथा मुनि निकर बिहाई।।

(रा0 7/55–3,4)

गरुड़ तो महाज्ञानी हैं, सदैव हरि के साथ रहते हैं और उनके सेवक हैं। उनको मोह कैसे हो गया? पक्षियों में सर्वश्रेष्ठ गरुड़ जी ने पक्षियों में सबसे नीच पक्षी काग से जाकर कथा कैसे सुनी? ऋषि ने श्राप दिया था–

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला।
सपदि होहि पच्छी चंडाला।।

(रा0 7/112–15)

गरुड़ के दर्शन माने भगवान् के दर्शन। हमारे यहाँ यदि किसी काम के लिए चलो और रास्ते में गरुड़ पक्षी मिल जाए तो कहते हैं कि अब तो हमारा काम पूरा हो जाएंगा, इतना पुण्य होता है गरुड़ दर्शन का। यदि काग सामने आ जाए तो सर्वनाश हुआ माना जाता है। कहा कि गरुड़ ने मुनियों को त्याग कर चाण्डाल पक्षी काग के पास जाकर कथा कैसे सुन ली? यही तो रहस्य है। गरुड़ कौन हैं जानते हो? भक्ति के परम आचार्य हैं।

जहाँ वैदिक सिद्धान्त में कर्म के बाद उपासना है और उपासना के बाद ज्ञान है, वहाँ तुलसी रामायण में यह क्रम आप नहीं पायेंगे। यहाँ पर तुलसी ने पहले कर्मकाण्डी अर्थात् कर्म के आचार्य और कर्म के आधार

याज्ञवल्क्य जी को बैठाया। कर्म और धर्म से ज्ञान की पूर्ति करते हुए भगवान् शकर को लाकर बैठा दिया। अब शंकर ज्ञान के स्वरूप हैं लेकिन उनसे भी परे अर्थात् उस ज्ञान से भी परे भक्ति की प्रतिष्ठा करने के लिए शंकर स्वय जा करके भुशुण्डी के सत्संग में बैठते हैं और उनसे कथा सुनते हैं। भवानी ने कहा कि चलो गरुड़ जी भुशुण्डी के पास चले गए कथा सुनने परन्तु –

तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी।
कहहु मोहि अति कौतुक भारी।।

(रा0 7/55–2)

हे मदनारी! आप तो कामदेव को भस्म करने वाले हो, प्रभो! आप तो ज्ञान की ज्योति हो, आपको क्या गर्ज पड़ गई थी कि आपने जा करके भुशुण्डी के यहाँ कथा सुनी? भगवान् शंकर ने मुस्कराते हुए उसका उत्तर दिया। कहा देवी –

प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा।
सती नाम तब रहा तुम्हारा।।
दच्छ जग्य तव भा अपमाना।
तुम अति क्रोध तजे तब प्राना।।

(रा0 7/56–2,3)

पहले जन्म में तुम्हारा दक्ष के यहाँ अवतार हुआ था तब तुम्हारा सती नाम था। दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ और तूने वहाँ प्राण त्याग दिया। फिर?

दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें।

(रा0 7/56–5)

तुम्हारे वियोग में मैं दु:खी हो गया। दु:खी व्यक्ति को शान्ति तथा सुख कहाँ मिलता है? भगवान् की कथा में। उस समय मैंने भुशुण्डी के आश्रम में जाकर कुछ काल तक निवास किया। कैसे निवास किया? हंस के रूप में।

वहाँ हंस का शरीर धारण करके मैंने निवास किया और भुशुण्डी से कथा सुनी। भगवान् शंकर ने यह कहानी पार्वती को सुनाई।

अब मैं आप लोगों को बताने जा रहा हूँ कि पहले कर्म फिर ज्ञान और पश्चात् उपासना नहीं भक्ति है। उपासना कर्म में ही समाहित हो जाती है। यदि कर्म उपासना युक्त नहीं होगा तो ज्ञान में कारण नहीं बनेगा। यदि कर्म कामना युक्त होगा तो भोग में कारण बनेगा, अज्ञान में कारण बनेगा, वो कर्म नहीं हो सकता इसलिए गोस्वामी जी ने वैदिक उपासना को कर्म के साथ ही समाहित कर दिया और जगह–जगह पर इसका निर्देश दिया है। भाानु प्रताप के प्रसंग में तथा रामायण में जगह–जगह इसकी विवेचना की है। भगवान् के अनन्य चरणानुरागी जिस भक्ति की चाह रखते हैं, जिस भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, वह भक्ति उपासना नहीं है, वह ज्ञान की चेरी नहीं है। श्रीमद्भागवत में आपको प्रसंग मिलेगा जिसका प्रारम्भ ही इससे होता है कि भक्ति माँ है और ज्ञान–वैराग्य उसके पुत्र हैं। कहा कि भक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है? नहीं, भक्ति ज्ञान से प्राप्त नहीं होती। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है –

सो सुतंत्र अवलंब न आना।
तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।।

(रा0 3/16–3)

ज्ञान और विज्ञान दोनों भक्ति के अधीन हुआ करते हैं। भक्ति ज्ञान–विज्ञान के अधीन नहीं है, ऐसा उनका सिद्धान्त है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि रामायण का सार सर्वस्व पहले कर्म है। कौन सा कर्म? जो प्रभु समर्पित कर्म है,जिसको उपासना युक्त कर्म कहते हैं। उपासना सूखी नहीं है, उपासना भावना प्रधान ही नहीं है बल्कि भावना युक्त कर्म प्रधान हुआ करती है। तभी वो धर्म बनेगी अन्यथा वह धर्म नहीं अपितु काम का कारण बन करके –

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।

(गीता 2/43)

वह स्वर्ग प्रदान करने का साधन बन जाएगी, मोक्ष प्रदान करने का साधन नहीं बनेगी। गोस्वामी जी इसीलिए कहते हैं कि उपासना मिश्रित कर्म, फिर ज्ञान और फिर ज्ञान का सही परिणाम तो भगवद् प्रेम है –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

(रा0 3/16-1)

एक रास्ता यह है लेकिन उसी समय भगवान् लक्ष्मण से कहते हैं –

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई।।
सो सुतंत्र अवलंब न आना।
तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।।

(रा0 3/16-2,3)

यह ज्ञान-विज्ञान जो योग और उपासना द्वारा प्राप्त होता है,वह भक्ति के अधीन है। मैं आप लोगों को बता रहा था कि रामायण का सार सर्वस्व है भागवत धर्म की प्रतिष्ठा और भागवत धर्म का सार सर्वस्व है भुशुण्डी गीता जिसमें कर्म योग, ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। भुशुण्डी गीता कहाँ से शुरू होती है यह बता रहा हूँ। भुशुण्डी जी अपनी सारी कहानी गरुड़ जी को सुना देते हैं और वहाँ पर बताते हैं कि जब मैं गुरु लोमश ऋषि की शरण में गया तो गुरु ने हमें बार-बार ब्रह्मबोध का उपदेश दिया –

ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी।
मोहि परम अधिकारी जानी।।
लागे करन ब्रह्म उपदेसा।

अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।।

(रा0 7/111–2,3)

मुनि ब्रह्मज्ञानी थे। वे साक्षात् भगवान् शंकर के अवतार और भगवान् शंकर के कृपा पात्र थे। वे ज्ञान की साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने भुशुण्डी को पूर्व जन्म में जब कि वो ब्राह्मण कुमार के रूप में थे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देना शुरू किया लेकिन उस ब्राह्मण कुमार के हृदय में भगवान् शंकर के श्राप के पश्चात,उनके आशीर्वाद से भगवान् की भक्ति अंकुरित हो चुकी थी इसलिए उस ब्राह्मण कुमार ने ऋषि के चरण पकड़ लिए और कहा – भगवन्!

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।

(रा0 7/111–11)

यह जो आप हमें निर्गुण का उपदेश दे रहे हैं यह बहुत अच्छी बात है लेकिन मैं अधीर हूँ, जब तक मैं अपनी इन आँखों से भगवान् श्रीराम का साक्षात्कार नहीं कर लेता तब तक मैं निर्गुण उपदेश नहीं सुन सकता। मुझे तो आप वो रास्ता बताईए जिससे मुझे साक्षात् भगवान् के दर्शन हो जाएं। गुरु को क्रोध आ गया, कहने लगे– अरे नीच! तुम्हें पता है मैं तुम्हें परम सीख दे रहा हूँ, परम ज्ञान दे रहा हूँ।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि।
उत्तर प्रतिउतर बहु आनसि।।

(रा0 7/112–13)

मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान दे रहा हूँ और तुम उसे ग्रहण नहीं करना चाहते। मेरे साथ वाद–विवाद करते हो, उत्तर–प्रत्युत्तर करते हो? जाओ मैं तुम्हें श्राप देता हूँ–

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला।
सपदि होहि पच्छी चंडाला।।

(रा0 7/112–15)

जाओ तुम चाण्डाल पक्षी हो जाओ। भुशुण्डी जी कहते हैं भगवन् !

लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई।
नहिं कछु भय न दीनता आई।।

(रा0 7/112-16)

मैंने मुनि के श्राप को शिरोधार्य किया। मेरे को न तो भय लगा न दैन्यता आई। जो भगवान् के अनन्य चरणानुरागी हैं उनके हृदय में दीनता के लिए स्थान नहीं होता। अब यहाँ पर पार्वती को शंका हो गई। बोली– भगवन्! उस ब्राह्मण कुमार को अकारण गुरु ने श्राप दे दिया। वह ब्राह्मण कुमार भी तो श्राप दे सकता था, उसने मुनि को श्राप क्यों नहीं दिया? कहा कि नहीं, देवी! उसने ऐसा नहीं किया। क्यों नहीं किया? आगे कह रहे हैं कि पहले सुनो तो सही पूरी कथा भुशुण्डी जी क्या कहते हैं–

तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ।।

(रा0 7/112)

मैं तुरन्त काग बन गया। काग बनने पर भी मुनि के चरणों में प्रणाम किया। जो क्रोध करे, श्राप दे और ब्राह्मण से चण्डाल बना दे, उसके चरणों में प्रणाम करे, यही तो भक्ति है और भक्ति किसे कहते हैं ! मैंने सोचा कि मेरे प्रभु परीक्षा ले रहे हैं। प्रसन्नता के साथ मैं उड़ करके चल दिया। पार्वती ने कहा– भगवन् ! श्राप के बदले में श्राप क्यों नहीं दिया? भगवान् समझा रहे हैं –

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत् केहि सन करहिं बिरोध।।

(रा0 7/112ख)

हे उमा! जो प्रभु के चरणों के अनुरागी हैं वे सारी सृष्टि को ब्रह्ममय देखते हैं, राममय अथवा इष्टमय देखते हैं, वो किससे विरोध करें? जब कोई शत्रु हो तब उसे श्राप दें। जब कोई उनका दुश्मन हो तब तो उसका अहित चाहें। जो

सर्वरूप में अपने प्रभु को देख रहा है, वह किसको श्राप देगा? किससे विरोध करेगा? यही भक्त की महिमा है। ज्ञानी को क्रोध आ जाता है, भक्त को क्रोध नहीं आता। ज्ञानी श्राप दे सकता है भक्त श्राप नहीं देता। ज्ञानी किसी का अहित कर सकता है भक्त से किसी का अहित नहीं होता। भक्त का लक्षण क्या है?

पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाउ खगराया।।

(रा0 7/121–14)

मन, वचन और कर्म से सदैव दूसरे का कल्याण करना यह संत का, भक्त का सहज स्वभाव होता है इसलिए भुशुण्डी जी चल पड़े। अब जब ऋषि ने देखा कि इसको न आमर्ष हुआ, न रोष हुआ, न इसने कुछ कहा बल्कि प्रणाम करके जा रहा है। वहाँ पर तो गरुड़ जी को भी शंका हो गई। गरुड़ ने कहा– भगवन् ! ऋषि ने तो बड़ा अन्याय किया। उन्होंने आपको श्राप दे दिया। भुशुण्डी जी ने कहा कि न–न ऋषि को ऐसा नहीं कहना चाहिए। वे मेरे गुरु हैं। कहा कि गुरु यदि श्राप दे दें तब भी पूज्य होते हैं।

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन।
उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।।

(रा0 7/113–1)

गुरु का क्या दोष? वो तो कृपा के समुद्र होते हैं। उन्हें तो रघुवंश विभूषण ने प्रेरित किया कि ज़रा श्राप देकर देख तो यह अधिकारी भी है या नहीं? उन्होंने श्राप दे दिया। गरुड़ जी ने कहा कि फिर तो आपके रघुवंश विभूषण बड़े कठोर हैं। इतने निर्दयी यदि भगवान् हैं तो आपको उनकी क्या जरूरत है? भुशुण्डी जी कहते हैं कि आप फिर गलती कर रहे हो? प्रभु निर्दयी नहीं हैं। कहा, फिर?

कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी।

लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी।।

(रा० 7/113-2)

कहा कि कृपासिन्धु ने मुनि की मति को भ्रमित कर दिया मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के लिए।

एक बात याद रखो भगवान् को मुक्ति देना सरल है, भक्ति देना बहुत कठिन है। भगवान् भक्ति सीधे से नहीं देते क्योंकि भक्ति में भगवान् को अपने स्वयं को देना पड़ता है। एक पद में मैंने लिखा है –

हैं भक्त समर्पित क्या करते, भगवान् समर्पित होते हैं।

भक्त के पास क्या समर्पण करने के लिए है? भक्त क्या समर्पण करेगा? आप कहो कि मैं अपने को समर्पित कर रहा हूँ, क्या समर्पित कर रहे हो? परमात्मा को आपके हाड़–मास की ज़रूरत है? नहीं। क्या वह तुम्हारा है? नहीं, वह तो पंच महाभूतों का है। जब तुम कहते हो भगवान् मैं तुम्हें समर्पित हूँ तो केवल तुम अपने अहं को भगवान् को देते हो। अहं कौन तुम्हारा इतना शुद्ध है कि भगवान् लेकर के तृप्त हो जायेंगे उसे? इस गन्दे–मन्दे, सीमित विषयासक्त अहं को भगवान् के चरणों में समर्पित करना बहुत बड़ा दान है क्या? नहीं। लेकिन जिस दिन तुम अपने अहं को समर्पित कर देते हो उस दिन भगवान् तुम्हारा हो जाता है। समर्पण तो भगवान् करते हैं। वह अनन्त महिमावान् तुम्हारे पीछे–पीछे घूमने लगता है। आप ज़रा सोचिए कि भगवान् कितने दयालु हैं कितने कृपालु हैं जो भक्त के पीछे स्वयं घूमते हैं।

पीछे–पीछे हरि फिरे कहत कबीर कबीर।

यह कबीर दास जी ने लिखा है। भुशुण्डी जी गरुड़ जी से कहते हैं कि लोमश ऋषि ने ब्राह्मण को ब्रह्मज्ञान तो देना चाहा लेकिन भक्ति का रहस्य नहीं बताया। भक्ति के रहस्य का पात्र उसे कब समझा? जब श्राप देकर उसे चाण्डाल योनि में पहुंचा दिया और बदले में उसमें आमर्ष तथा क्रोध नहीं आया, भगवान् में निष्ठा भी बनी रही तब उन्होंने कहा कि हाँ अब यह सही

पात्र है। तब –'सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।' तब मुनि ने हमें अपने पास बुला लिया और उस समय मेरे ऊपर कृपा करके –

मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा।
हर्षित राममंत्र तब दीन्हा।।
बालकरूप राम कर ध्याना।
कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।

(रा0 7/113–6,7)

उन्होंने मुझे राम मन्त्र की दीक्षा दी और मुझे बालक रूप राम की ध्यान करने की विधि बताई। विधि बता करके आशीर्वाद दिया –

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा।
रामचरितमानस तब भाषा।।

(रा0 7/113–9)

फिर उन्होंने कुछ दिनों तक अपने पास रखा, रामचरित मानस की कथा बताई और उसके पश्चात् मुझे विदा किया। मुनि की करुणा बहुत परीक्षा के बाद हुई। भुशुण्डी जी की यह बात सुनकर के गरुड़ जी के हृदय में बहुत बड़ी आशंका पैदा हो गई कि वेद–शास्त्र ज्ञान की महिमा बताते हैं और कहते हैं कि ज्ञान से दुर्लभ और कुछ नहीं है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिलती, यह वेद की घोषणा है। मुक्ति से परे और कुछ नहीं है, यह वेद का अन्तिम पुरुषार्थ है लेकिन भुशुण्डी तो कोई और ही कहानी कह गए। गुरु ज्ञान का उपदेश दे रहा है परन्तु भुशुण्डी जी कहते हैं कि नहीं, हमें आपका ज्ञान नहीं चाहिए, मुक्ति नहीं चाहिए। फिर क्या चाहिए? कहा कि हमें तो प्रभु की भक्ति का रास्ता बताईए। इसका अभिप्राय कि मुक्ति के मार्ग से भक्ति का मार्ग भिन्न है? मुक्ति से भक्ति श्रेष्ठ है? अब यह शंका हो गई। गरुड़ जी ने तुरन्त प्रश्न कर लिया, हे प्रभो! सभी संत, वेद, पुराण, शास्त्र यही गीत गा रहे हैं कि ज्ञान से दुर्लभ और कुछ नहीं है –

कहहिं संत मुनि बेद पुराना।
नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसांई।
नहिं आदरेहु भंगति की नाई।।

(रा0 7/115-9,10)

उस ज्ञान का उपदेश मुनि ने आपको दिया लेकिन प्रभो! अपने ज्ञान का आदर भक्ति के समान नहीं किया-

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता।
सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।।

(रा0 7/115-11)

हे कृपानिधान! उस ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है, कृपा करके आप मुझे बताईए? यह प्रश्न गरुड़ जी का भुशुण्डी जी से है। भुशुण्डी जी भक्ति के आचार्य हैं। भक्ति के आचार्य होने के नाते वे उस रहस्य के ज्ञाता हैं। वे साक्षात् लोमश ऋषि के शिष्य हैं और लोमश ऋषि साक्षात् भगवान् शंकर के ही अवतार हैं, उन्हीं के ही कृपा पात्र हैं। वेद का मार्ग ज्ञान का मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है और भक्ति का मार्ग अनूठा मार्ग है। यह भागवत धर्म का मार्ग है। इसीलिए वेद के मार्ग में बड़ी विधि है, व्यवस्था है और उसकी पूर्ति में बड़े व्यवधान भी हैं। यदि विधि विपरीत कुछ काम हो जाए तो सर्वनाश भी है, पतन भी है लेकिन भागवत मार्ग बिल्कुल इससे भिन्न है। भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय में इसकी घोषणा करते हुए बताया कि वेद के मार्ग पर चलने वाले के अभिक्रम का भी नाश हो जाता है। अभिक्रम माने प्रारम्भ का। आप कोई यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं। यदि पूर्ण रूप से पूरा नहीं किए, बीच में कोई व्यवधान हो गया तो जितना आपने किया था, सब नष्ट हो जाएगा, यह नहीं कि जितना आपने किया था, वहीं से आगे आप प्रारम्भ कर देंगे। नहीं, बिल्कुल नहीं, सारा श्रम आपका बेकार। यदि उसमें कोई त्रुटि रह गई तो

सारा कर्मकाण्ड आपका व्यर्थ लेकिन भक्ति के मार्ग में यह नहीं है। भगवान् कहते हैं कि इसमें अभिक्रम माने प्रारम्भ का नाश नहीं होता। जितना आपने कर लिया उतना सार्थक हो गया। यदि फिर दुबारा करने का है तो जहाँ पर रुके वहीं से आगे तुम्हारा रास्ता चल पड़ेगा।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

(गीता 2/40)

वेद के मार्ग में प्रत्यवाय होता है अर्थात् विपरीत प्रभाव होता है लेकिन भक्ति में ऐसा नहीं होता। वेद में एक कथा है कि वृत्त पूषा का पुत्र था जिसकी वेदों में बड़ी महिमा है। जाति से वृत्त ब्राह्मण था लेकिन कर्म उसका बड़ा निम्न था। देवासुर संग्राम में वह असुरों का मुख्य अधिपति था और देवताओं का अधिपति इन्द्र था। वृत्त इन्द्र का विरोधी था इसलिए उसे वृत्तासुर कहते हैं। था वह ब्राह्मण का लड़का लेकिन अपने आचरण से असुर हो गया था। वह वेद का महा पण्डित था। कुछ विद्वानों का मत है कि इन्द्र और वृत्त की कथा ही राम और रावण की कथा के रूप में परिणत हुई है क्योंकि रावण भी ब्राह्मण पुत्र था। वह भी महाविद्वान् था लेकिन मेरी ऐसी राय नहीं है। मेरी राय है कि इन्द्र और वृत्त की कथा अलग है, राम और रावण एक ऐतिहासिक घटना है। वृत्त और इन्द्र की कथा मैं सुना रहा हूँ। वृत्त विजय के लिए यज्ञानुष्ठान कर रहा था। उसका सारा अनुष्ठान सिद्ध हुआ लेकिन आखिर में वेद के मन्त्र के उच्चारण में एक मात्रा की कमी हो गई। वह कहने जा रहा था कि वृत्तासुर के शत्रु का नाश हो– स्वाहा। मात्रा की कमी के कारण उसने कहा कि वृत्तासुर शत्रु का नाश हो– स्वाहा। परिणामतः उसी का नाश हो गया। वह अपने ही नाश का कारण बन गया। वेद के मन्त्र के गलत उच्चारण का यह परिणाम हुआ। इसको कहते हैं प्रत्यवाय। प्रत्यवाय माने उल्टा फल। भगवान् गीता में कहते हैं कि यह कर्मकाण्ड का रास्ता खतरनाक है। इसमें विघ्न पड़ने पर उल्टा परिणाम भी दे देता है लेकिन जो

भागवत धर्म का रास्ता है इसमें अभिक्रम का नाश नहीं होता और इसमें उल्टा फल भी नहीं होता और –

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

(गीता 2/40)

इस धर्म का थोड़ा सा भी अनुष्ठान कर लिया जाए तो महान् भय से मुक्ति मिल जाती है। यही भक्ति का मार्ग भागवत धर्म कहा जाता है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भुशुण्डी जी के सामने गरुड़ जी के द्वारा प्रश्न उपस्थित किये गये हैं –

कहहिं संत मुनि बेद पुराना।
नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं।
नहिं आदरेहु भगति की नाईं।।
ग्यानहि भगतिहि अंतर केता।
सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता।।

(रा0 7/115-9,10,11)

दो प्रश्न हैं –ज्ञान से दुर्लभ कुछ नहीं है, यही वेद, पुराण, संत और शास्त्र कहते हैं। मुनि ने उसी ज्ञान का आपको उपदेश दिया लेकिन भगवन् ! आपने उस ज्ञान का उतना आदर नहीं किया जितना कि भक्ति का आदर किया है। आप कृपा करके बताईए कि ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है? यह प्रश्न है। इस प्रश्न का तो सीधा सा उ़त्तर दे दिया भुशुण्डी जी ने –

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

(रा0 7/115-13)

ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है। संसार से उत्पन्न हुए खेद को दोनों ही हर लेते हैं। यदि जन्म–मरण के प्रवाह को नाश करने में दोनों बराबर हैं, दोनों

में कुछ अन्तर नहीं था तो आपने भक्ति का आग्रह क्यों किया? आप उसके आग्रह से इस अवस्था को क्यों पहुंचे? कहा कि –

नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर।
सावधान सोउ सुनु बिहंगबर।।

(रा0 7/115-14)

सामान्य दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है परन्तु जो मुनियों के भी ईश हैं, जो महाज्ञानी हैं, वो इसमें कुछ अन्तर बताते हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़! उस अन्तर को तुम सावधान होकर सुनो। अवधान माने बुद्धि। सावधान माने बुद्धि सहित होकर, विवेक सहित होकर सुनो, यदि तुम विवेक से युक्त नहीं हुए तो यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आएगी। यह गम्भीर बात है। गम्भीर बात को सुनने के लिए गम्भीर श्रोता की जरूरत होती है।

श्रोता तीन प्रकार के होते हैं –सोता, श्रोता और स्त्रोता। एक तो होते हैं सही में श्रोता। श्रोता के लक्षण क्या होते हैं, जानते हो?

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।

(रा0 7/69)

पांच गुण होते हैं श्रोता में– सुमति, सुशील, पवित्र,कथा का प्रेमी और भगवान् का भक्त हो। यदि ये गुण हैं तो श्रोता। यदि ये गुण नहीं हैं तो व्याख्यान करने वाला व्याख्यान कर रहा है और सुनने वाला सो रहा है तो कहते हैं सोता। तीसरे होते हैं जो सुनते तो जायेंगे लेकिन कतर–कतर काटते जायेंगे, ये होते हैं स्त्रोता इसलिए अवधान सहित माने (बुद्धि वृत्ति) पूरी की पूरी उसके साथ हो जाए। अवधान एक साधना पद्धति है। अवधान साधना में साधक अवधानी होते हैं, दशावधानी होते हैं तथा शतावधानी तक होते हैं। जैन सम्प्रदाय में यह साधना बहुत प्रचलित है। यह बहुत उपयोगी साधना है। मैंने भी इसे किया है। इस साधना का प्रयोजन क्या होता है? जैसे

एक व्यक्ति दशावधान वाला बैठा हुआ है तो उससे दस व्यक्ति एक साथ प्रश्न करते हैं। जो शतावधानी होता है उससे 1 0 0 व्यक्ति एक साथ प्रश्न करते हैं। उनको बार–बार पूछना नहीं पड़ता कि आपने क्या कहा। जिस ढंग से प्रश्न पूछा है उसी क्रम से एक–एक प्रश्न का उत्तर वह दे देता है। उनका दिमाग कम्प्यूटराईज़ड हो जाता है। उसको कहते हैं अवधानी। उस अवधान के सहित जो सत्संग में जाता है उसको कहते हैं सावधानी। बातचीत में भी कह देते हैं, सावधान होकर सुनो। भुशुण्डी जी गरुड़ जी जैसे श्रोता को भी कहते हैं कि सावधान होकर सुनो।

आजकल मैं बहुत वर्षों से रामायण कहना छोड़ दिया हूँ। अब मैं केवल शिष्यों को रामायण पढ़ाता हूँ। मुझे यहाँ आकर पता चला कि मुझे भुशुण्डी गीता पर बोलना है। भुशुण्डी गीता दो हैं, एक तो रामायण में है दूसरी भुशुण्डी गीता महारामायण में है। उस महारामायण का नाम है योग वसिष्ठ। योगवसिष्ठ में भुशुण्डी जी वशिष्ठ जी को जो उपदेश देते हैं उसको भी भुशुण्डी गीता कहते हैं। दोनों का विषय अलग–अलग है। रामायण में विषय है भक्ति और महारामायण में विषय है योग। मैं आपको रामायण में जो भुशुण्डी गीता है उस पंर दो दिन और विचार दूंगा।

हरि ॐ तत्सत्।

2

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कंल्याणप्रद हो, यह मेरी आन्तरिक शुभकामना। प्रभु का अनन्य चरणानुरागी भक्त मोक्ष नहीं चाहता, प्रभु का अखण्ड प्रेम चाहता है। वह यह जानते हुए भी कि उसका जीवन प्रभु की ही एक ज्योति है,.उससे भिन्न नहीं है फिर भी अपनी भिन्नता को कायम रखता है जिससे वह प्रभु के प्रेम का पान कर सके, आस्वादन कर सके तथा अपने भावों से,क्रियाओं से प्रभु को प्रेम प्रदान कर सके इसलिए वह मुक्त पुरुष से भी श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है। मुक्त पुरुष तो अपने आपको उसमें मर्ज कर देता है लेकिन भक्त प्रभु में लय होकर भी प्रभु से भिन्न रहता है। जो गति मुनियों को दुर्लभ होती है वही अनन्य भक्ति रूपी गति भक्त को प्राप्त होती है।

कल मैंने बताया था कि महाज्ञानी गरुड़ के

प्रश्न के उत्तर में अपने जीवन की सारी घटनाओं का वर्णन करते हुए भुशुण्डी जी ने उनसे कहा –

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप।।

(रा0 7/114ख)

भक्ति के पक्ष में हठ करके अपने गुरुदेव को श्राप देने पर भी मजबूर कर दिया और उन्होंने क्रोध में उसे श्राप दे दिया क्योंकि गुरु करुणानिधान हैं–

एक सूल मोहि बिसर न काऊ।
गुर कर कोमल सील सुभाऊ।।

(रा0 7/110–2)

भुशुण्डी जी कहते हैं कि मेरी जिंदगी में एक शूल बना हुआ बार–बार चुभा करता है क्योंकि मैं अपने गुरु के कोमल, शील स्वभाव को जब स्मरण करता हूँ तो हृदय व्यथित हो जाता है। जिस गुरु की कृपा से भगवद् भक्ति का वरदान मिला, वह गुरु उस जन्म में लोमश ऋषि नहीं थे। लोमश ऋषि तो उस कृपा के परिणाम में प्राप्त हुए थे। वे तो उनके पूर्व जन्म के शिव मन्दिर मे भगवान् शिव के कोप से रक्षा करने वाले शिव भक्त गुरु थे और उन्हीं गुरु की प्रेरणा से उनको भगवान् श्रीराम की अनन्य भक्ति प्राप्त हुई थी। उसी अनन्य भक्ति को लेकर वे महर्षि लोमश के चरणों में पहुंचे और उसी भक्ति के लिए हठ किया जिसकी परीक्षा में महर्षि ने श्राप दे दिया। लोमश ऋषि कोई सामान्य नहीं हैं। हमारे यहाँ पुराणों में उनके विषय में कहा गया है कि जब ब्रह्मा का एक दिन यानी कल्प पूरा होता है तो उनका एक लोम गिर जाता है। ऐसी उनकी आयु है। उनके जीवन में कितने कल्प बीत गए हैं यह नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोमश ऋषि के चरणों में पहुंच करके राम भक्ति के विषय में हठ किया। लोमश ऋषि ने ज्ञान का उपदेश दिया। ज्ञान का तिरस्कार करके पुनः भक्ति का हठ रोपा। परिणाम क्या हुआ–

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषी साप।

(रा० 7/114 ख)

महर्षि ने श्राप दे दिया। ब्राह्मण कुमार से चाण्डाल बना दिया अर्थात् काग बना दिया लेकिन उस भक्ति की महिमा देखिए ! कहते हैं –

मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप।।

जो गति मुनियों को दुर्लभ है 'मुक्ति में भक्ति' यह दुर्लभ गति मुझे मिली। धर्म से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति यह सुलभ गति है लेकिन मुक्ति मे भक्ति यह बड़ी दुर्लभ गति है। कहा कि उन मुनि ने दुर्लभ वर हमें दे दिया। किसके प्रताप से? यह भजन का प्रताप है। भगवान् में अनन्य निष्ठा का प्रताप है। उन्होंने भक्ति की महिमा का गान करते हुए महात्मा गरुड़ को उसका भेद बताया। गरुड़ जी की शंका है –

कहहिं संत मुनि बेद पुराना।
नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं।
नहिं आदरेहु भगति की नाईं।।

(रा० 7/115–9,10)

वेद, पुराण, संत तथा शास्त्र सभी कहते हैं कि ज्ञान से दुर्लभ और कुछ नहीं है। महर्षि लोमश ने बार–बार आपको ज्ञान का उपदेश दिया है किन्तु आपने उसका भक्ति के समान आदर नहीं किया बल्कि उसके बदले में कहा कि–

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।

(रा० 7/111–11)

हे गुरुदेव! आप अपने इस निर्गुण उपदेश को अपने पास रखिए, पहले तो आप मुझे वो मार्ग बताईए जिससे मैं अपनी इन आँखों से अवधेश कुमार श्रीराम को देख लूं, उसके पश्चात् मैं आपके ज्ञान की बात सुनूंगा। यह जो

आपने ज्ञान का तिरस्कार करते हुए भगवत् प्रेम की प्रतिष्ठा की है, इसमें कारण क्या था?

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता।

(रा0 7/115-11)

उस ज्ञान और भक्ति में क्या अन्तर है? यह प्रश्न है गरुड़ जी का। इसके उत्तर मे भुशुण्डी जी ने कहा –

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

(रा0 7/115-13)

जहाँ तक मुक्ति का प्रश्न है, संसार बंधन से छूटने का प्रश्न है, ससार के दु:खों से सदा के लिए मुक्त होने का प्रश्न है तथा जन्म–मरण के प्रवाह से मुक्त होने का प्रश्न है, इसमें ज्ञान और भक्ति का बराबर का स्थान है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। कहा कि जब दोनों में कोई अन्तर नहीं है फिर आपने ज्ञान से तृप्ति क्यों नहीं की? कहा कि मैं नहीं कहता लेकिन–

नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर।

(रा0 7/115-14)

मन पर जो शासन करते हैं उन्हें मुनीश कहते हैं और उन मुनियों के भी जो पूज्य हैं, ईश्वर हैं, आराध्य हैं, उन्हें मुनीश्वर कहते हैं। वो मुनीश्वर इस रहस्य को जानते हैं क्योंकि बहुत सूक्ष्म विषय है इसलिए हे विहंगवर अर्थात् आकाशचारियों में श्रेष्ठ! सावधान होकर सुनो। ज्ञान के रास्ते को विहंगम मार्ग कहते हैं। विहंगम् मार्ग माने आकाश मार्ग से जाने वाला। गरुड़ जी विहंगम् मार्गियों में सबसे श्रेष्ठ हैं। गरुड़ ज्ञानी नहीं महाज्ञानी हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है –

गरुड़ महाग्यानी गुन रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी।।

(रा0 7/55-3)

हमारे यहाँ जो सम्प्रदाय बने हैं इन सम्प्रदायों के अलग–अलग आचार्य हैं। किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् शंकर हैं, किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् मारुति हैं, किसी सम्प्रदाय की आचार्य भगवती श्री जी हैं, किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् का गदा है, किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् का सुदर्शन है, किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् का शंख है और किसी सम्प्रदाय के आचार्य भगवान् के वाहन गरुड़ जी हैं। गरुड़ जी भगवान् के अत्यन्त निकट हैं इसलिए भगवान् के चरित्र के विषय में, भगवान् की महिमा के विषय में इनसे अधिक जानने वाला और कोई नहीं है। गरुड़ सम्प्रदाय को हमारे यहाँ ज्ञान मार्गी सम्प्रदाय कहते हैं। यहाँ पर भुशुण्डी जी गरुड़ को सावधान करते हुए कह रहे हैं कि आप ज्ञान के आचार्यों में श्रेष्ठ हैं और यह जो मैं रहस्य बताने जा रहा हूँ यह बिल्कुल इसके विपरीत है। अभी तक दुनिया यही मानती आई है कि उपासना ज्ञान का साधन है। आज मैं जिस उपासना, जिस भक्ति की बात बताने जा रहा हूँ वह ज्ञान की साधना नहीं, वह ज्ञान का साध्य है। अभी तक लोग यह मानते आए हैं कि कर्म से उपासना, उपासना से ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति होती है। भुशुण्डी जी कहते हैं कि जो बात आज मैं बताने जा रहा हूँ वह ज्ञानियों के लिए भी दुर्लभ है। यह भक्ति मार्ग है जिसकी बात बताने जा रहा हूँ। यह मार्ग सब नहीं जानते केवल मुनीष जानते हैं इसलिए सावधान होकर सुनिए –

ग्यान बिराग जोग बिग्याना।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।

(रा0 7/115–15)

यहाँ पर हरि जाना विशेषण है। 'हरि जाना' माने भगवान् के वाहन। हे भगवान् के वाहन! योग, विराग, ज्ञान और विज्ञान, ये चारों पुरुष संज्ञक हैं। यहाँ क्रम में थोड़ा व्यतिक्रम है। विराग पहले आना चाहिए था और फिर ज्ञान और विज्ञान क्रमशः आने चाहिए थे। कविता की दृष्टि से विराग से छन्द प्रारम्भ

नहीं हो सकता था इसलिए योग को पहले रखा गया है।

यहाँ 'हरि जाना' सम्बोधन क्यों दिया? इसलिए कि ज्ञानी अपने आपको पुरुष ही मानता है। उसमें पुरुषत्व की भावना बनी रहती है क्योंकि ज्ञानी स्वयं को समर्पित नहीं करता। वह क्या करता है? उसको ऐसी अनुभूति होती है –

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।।

(ईशावास्य0 16)

वह अपने अहं को प्रभु को समर्पित नहीं करता बल्कि प्रभु को अपने अहं के साथ जोड़ लेता है। 'सोऽहम्' वह जो पुरुष है वह मैं हूँ। वह मैं को विशाल कर लेता है। ज्ञान मार्ग के एक पथिक महात्मा कहते हैं–

बिन्दु में सिन्धु समान।

कहा कि यह तो आश्चर्य की बात है। अब तक तो सुनते आए थे कि बिन्दु सिन्धु में समा जाता है। कहा कि सुनते आए होंगे आप लेकिन यह मेरी अनुभूति है। बिल्कुल सही बात है। असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहुंचने पर यही लगता है कि मानो समुद्र आ करके उसमें गिर गया हो। यह नहीं लगता कि अपना बिन्दु उसमें लय हो गया। कहा कि –

बिन्दु में सिन्धु समान, को अचरज कासो कहे।
हेरनहार हिरान, रहिमन अपने आप में।।

भारत में रहीम खान खाना एक मुस्लमान संत हुए हैं। वह गोस्वामी तुलसीदास जी के मित्र थे। वे भी रामानन्द सम्प्रदाय के संत थे। उनके भी गुरु रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य थे लेकिन वो निर्गुण मार्ग के उपासक थे जैसे कबीर तथा रविदास थे। सगुण मार्ग के उपासकों ने भी अपने अनुभवों को कहा है कि बिन्दु में सिन्धु आकर समा गया, यह आश्चर्य है। कौन इसको सुनेगा? कौन मानेगा? खोजने वाला स्वयं ही खो गया, किसको खोजेगा? वेदान्त में हमारे यहाँ समझाया जाता है कि जैसे नमक का डला समुद्र की

थाह लेने के लिए जाता है। वह तो स्वयं ही समुद्रमय हो जाता है, उसकी थाह कैसे लेगा, जब खोजने वाला ही नहीं रहेगा? ऐसे रहीम खान खाना कहते हैं कि वह अपने में ही खो गया। वह सारा का सारा अपना स्वरूप हो गया।

मैं आपको बता रहा था कि ये जो ज्ञान मार्गी हैं ये ब्रह्म को अपने में उतारते हैं लेकिन गीता भागवत धर्म का ग्रन्थ हैं, उसमें भगवान् ने एक बात बताई –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

(गीता 7/19)

बहुत जन्मों के पश्चात् ऐसे ज्ञानी भी मेरी शरण में आते हैं। मुझ में समर्पित होते हैं। समर्पित होने के पश्चात् जो ज्ञानी की दशा होती है वह –

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

(गीता 7/19)

ज्ञानी और भक्त की दृष्टि में क्या अन्तर है? भक्त की दृष्टि में 'वासुदेव सर्वमिति' है– यह जो दिखाई दे रहा है सब वासुदेव स्वरूप है –

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।

(रा0 6/14)

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत।

(रा0 4/3)

जगदेव हरि हरिदेव जगत।
जगतो हरि तो नहीं भिन्न तनु।।

ज्ञानी की दृष्टि में –

अयमात्मा इदं सर्वम्।

मेरी यह आत्मा ही सब कुछ है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुश्यतः।।

(ईशा0 -7)

जिस ज्ञानी की दृष्टि में ऐसा आ गया कि मेरी ही आत्मा सर्वरूप में प्रकट है, मेरी ही आत्मा सर्व रूप में हो गई है, उसके लिए शोक कहाँ है, मोह कहाँ है?

यहाँ पर जिस मार्ग की बात कह रहे हैं भुशुण्डी जी वह भक्ति का मार्ग है। भक्ति के मार्ग में भक्ति के लक्ष्य रूप में यह नहीं है कि मैं सब कुछ हो गया, मेरी आत्मा सर्वरूपमय हो गई, वहाँ तो वासुदेव ही सर्वरूप में हैं, इसकी अनुभूति होती है। इसी दृष्टि को यहाँ व्यक्त करते हुए कह रहे हैं, हे हरियान! ध्यान से आप समझिए– आप ज्ञानी हो, आप इस रहस्य को समझ सकते हो –

ग्यान बिराग जोग बिग्याना।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती।
अबला अबल सहज जड़ जाती।।

(रा0 7/115–15,16)

कि पुरुष तो सब प्रकार से तेजस्वी ओर बलवान हुआ करता है और नारी स्वभावतः निर्बल हुआ करती है। यहाँ निर्बल किसको कहा जानते हो? माया को। माया ही अबला है इसलिए भुशुण्डी जी कहते हैं– पुरुष माया का त्याग कर सकता है यानी ज्ञानी माया का त्याग कर सकता है। यहाँ नारी माने सामान्य नारी की बात नहीं है। आगे चल कर इसको स्पष्ट करेंगे। ज्ञानी माया का त्याग कर सकता है। कौन ज्ञानी? इसके लिए दो प्रकार की योग्यता होनी आवश्यक है –

पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।

(रा0 7/115 क)

यदि पुरुष विरक्त और धीर मति वाला हो तब अर्थात् ये दो गुण होने

जरूरी हैं। पहले विरक्ति आती है या पहले धीर मति होता है? दोनों साथ–साथ होते हैं। जितनी मात्रा में विराग होता है उतनी मात्रा में ज्ञान होता जाता है। पूर्ण विराग में पूर्ण ज्ञान है और पूर्ण ज्ञान में ही पूर्ण विराग है। जो पूर्ण ज्ञानी हो गया उसको कहते हैं मतिधीर। 'धी' माने ज्ञान और 'र' माने होता है देने वाला इसलिए धीरा कहा जाता है। वेद में आया है –

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।

(ईशा0 13)

ऐसा ज्ञान दानियों से सुना है। ज्ञान का दान दे कौन सकता है? जो उसका स्वामी होगा, उसका अधिपति होगा। उसके पास इतना ज्ञान है कि उसका ज्ञान सारी दुनिया में फैल रहा है। ऐसा ज्ञानी जो पूर्ण विरक्त है जिसकी कहीं अनुरक्ति नहीं, कहीं आसक्ति नहीं है, जो दुनिया के सारे सुख–सुविधाओं से ऊपर उठ गया है, ऐसा यदि कोई ज्ञानी हो, यदि ऐसा कोई पुरुष हो तो माया का त्याग कर सकता है।

न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर।।

(रा0 7/115)

जो रघुनाथ जी के चरणों से विमुख है, जो कामी है, विषयासक्त है, वो माया का कभी त्याग नहीं कर सकता। माया का त्याग करना कोई खेल नहीं है। जितना कहने में सरल है उतना ही करने में कठिन है। तुलसीदास जी ने एक जगह कहा है –

कहत सुगम करत अगम सुनत मीठी लगती।

कहने में सुगम है, करने में कठिन है और सुनने में बड़ी मीठी लगती है।

चहत सकल लहत सकृत।

चाहते सभी हैं लेकिन मिलती किसी एक को है। बड़ी मुश्किल बात है। जो मतिधीर विरक्त हैं खतरा उनके लिए भी है।

सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।

बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।।

(रा0 7/115 (ख)

कहा कि ऐसे ज्ञान के निधान मुनि भी मृगनयनी और चंद्रवदनि माया को देखकर मोहित हो जाते हैं। मृगनयनी और चंद्रवदनि क्यों कहा? कहा कि आप जानते हैं कि चन्द्रमा में प्रकाश अपना नहीं है, चन्द्रमा का सौंदर्य अपना नहीं है, वह किसी का दिया हुआ है। किस का दिया हुआ है? सूर्य का। सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्रमा प्रकाशित होकर सुन्दर दिखाई देता है। कहा कि वह विधुबदनी है। इसी प्रकार से नारी में सौन्दर्य जो है वह सही में उसका अपना नहीं है।

हमारे यहाँ एक संत हुए हैं उनका नाम था महात्मा भर्तृहरि। उन्होंने नारी के स्वरूप की व्याख्या की है। उन्होंने कहा कि तुम नारी के स्वरूप में कहाँ सौन्दर्य देखते हो? कहा कि नारी का मुख चन्द्रमा के समान है। बोले नहीं, वह तो लार और थूक का केन्द्र है। कहा कि आँखें मृगी के समान हैं। कहा कि सुबह उठ कर देखो उसमें से कीचड़ निकलता रहता है। प्रत्येक अंग को देखो वहाँ सौन्दर्य नाम की कोई चीज़ नहीं। सौन्दर्य कहाँ से आता है? कहा कि इसी का नाम ही तो माया है जो असौन्दर्य में सौन्दर्य का आरोप कराती है। यह सुन्दरता आती कहाँ से है? कहा कि जैसे सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा को सुशोभित करता है ऐसे ही पुरुष की दृष्टि ही नारी मे सौन्दर्य का सृजन करती है, नारी में स्वतः का सौन्दर्य नहीं है। इसलिए उन्होंने दो उपमाएं दीं–

सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।।

(रा0 7/115)

मृगनयनी क्यों कहा? नारी के नेत्रों की उपमा तीन प्रकार के नेत्रों से दी गई है – खंजन नयन, मृगनयनी और मीनाक्षी। एक तो खंजन पक्षी के समान उसकी आँखें हैं। दूसरी मृगी जो वन में विहार करने वाली है उसके समान

उसकी आँखें हैं। तीसरा मीन जो जल में रहने वाली है उसके समान उसकी आँखें हैं। इस प्रकार नारी की आँखें तीन प्रकार की हुआ करती हैं– नभचर, थलचर और जलचर जैसी। मीन जलचर, मृग थलचर, और खंजन नभचर है। कहने का अभिप्राय कि जो जिस प्रकार के रास्ते पर चलने वाला है, उस के लिए बाधक बनने के लिए उसी प्रकार के नेत्रों से प्रहार करती हैं। एक तो यह भी भाव संतों ने किया। मेरी राय इससे कुछ भिन्न है। मैं ऐसा समझता हूँ कि उसमें तीन प्रकार के भाव हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है। कि नेत्रों में तीन प्रकार के गुण होते हैं।

अमीय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकी–झुकी परत जो चितवत एक बार।।

एक तो अमीय अर्थात् अमृत के समान जो जीवन दे देते हैं। दूसरे हलाहल विष के समान जो मृत्यु प्रदान करते हैं और तीसरे 'मदभरे' मदिरा के समान जो आदमी को पागल बना देते हैं। जीवन भी वही नेत्र देते हैं, मृत्यु भी वही नेत्र देते हैं और पागल भी वही नेत्र बनाते हैं। ये तीनों गुण उन नेत्रों के हैं। उनके लक्षण क्या होते हैं? कहा कि अमृत से युक्त जो नेत्र होते हैं वे श्वेत वर्ण के होते हैं। जो हलाहल विष के समान हैं वो श्याम वर्ण के होते हैं और जो मदभरे होते हैं वे रतनारे होते हैं। थोड़े–थोड़े लाल डोरे होते हैं आँखें में। इनका परिणाम? एक के देखने से आदमी जी जाता है, दूसरे के देखने से मर जाता है और तीसरे के देखने से मदभरे आदमी की तरह गति अर्थात् चाल हो जाती है। यहाँ पर तुलसीदास जी ने किस प्रकार के नेत्रों की बात कही है? मृगनयनी की बात कही है। मृगनयंनी के नेत्र मदभरे होते हैं। डबडबाये, उसके नेत्रों में पानी होता है। मृग की बड़ी–बड़ी आँखें बाहर निकली रहती हैं लेकिन उनमें पानी भरा हुआ होता है इसलिए यहाँ पर मृगी के नेत्रों की उपमा दी। मद से भरे नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान मुख वाली नारी को देखते ही वे ज्ञान के निधान मुनि भी –

बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।।

(रा0 7/115 (ख)

विवश हो जाते हैं ओर भूल जाते हैं अपनी अहमता, ममता को और अपने आप को खो देते हैं। कहा ऐसे क्यों होता है? कहा ''नारि बिष्नु माया प्रगट।।''यह नारी परमात्मा की साक्षात् माया है।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः।।

(दु0 स0 5/73)

ज्ञानीनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

(दु0स0 1)

दुर्गा सप्तशती में बताया गया है कि वह भगवती बड़े–बड़े ज्ञानियों के चित्त को पकड़ कर जबरदस्ती खींच करके मोह में डाल देती है। ऐसी यह प्रचण्ड देवी है। नारी इस संसार में साक्षात् विष्णु की माया है।

विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।

(दु0 स0 11/6)

ऋषि कहता है – हे भगवती! दुनिया में जितनी विद्याएँ है सब तुम्हारे स्वरूप हैं और दुनिया में जितनी नारियाँ हैं सब तुम्हारा ही स्वरूप हैं। भगवान् की उस प्रबल माया से कौन पार पा सकता है? पुरुष बनकर उसके साथ कौन युद्ध कर सकता है? बहुत मुश्किल है। भुशुण्डी जी कह रहे हैं कि बहुत मुश्किल है, सबके बस की बात नहीं है। भगवान् शंकर ने कामदेव को नष्ट तो कर दिया लेकिन उसे बस में नहीं कर सके।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि नारी अथवा भगवान् की माया से पार पाना बड़ा मुश्किल है। भुशुण्डी जी कह रहे हैं कि योग, विराग, ज्ञान

और विज्ञान, ये चारों पुरुष हैं। इनके सामने जब भगवान् की माया आ जाती है तो ये बड़े–बड़े पुरुष भी हथियार डाल देते हैं। इनसे बात बनती नहीं। ये वहीं फंस जाते हैं। हाँ, कोई एक बच जाता है। तुलसीदास जी लिखते हैं –

धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।

(रा0 1/85)

भगवान् शंकर के पास जब कामदेव जाने लगे, अपनी माया का विस्तार किया तो उस समय बड़े–बड़े ज्ञानियों की दुर्गति बताई है। ये सब ज्ञानी थे, योगी थे, मुनि थे, इनकी यह गति हो गई –

भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जो ब्रह्ममय देखत रहे।।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं।।

(रा0 1/85 छन्द)

कहा कि दो दण्ड तक कामदेव ने अपना ऐसा कौतुक दिखाया कि पुरुष स्त्रीमय जगत् को देखने लगे, स्त्रियां पुरुषमय जगत् को देखने लगीं। तुलसीदास जी से अनर्थ हो गया। क्या अनर्थ हो गया? आगे लिख दिया उन्होंने–

धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।

(रा0 1/85)

कहा कि किसी ने धैर्य धारण नहीं किया, सबके मन को कामदेव ने हर लिया। यह लिख तो दिया लेकिन अनर्थ हो गया, क्या करें? सारी दुनिया काम के बस में हो गई? कोई बचा ही नहीं? अरे–कहा नहीं, बहुत से भगवान् के भक्त रहे होंगे, बचे हुए? हमारे यहाँ संतसमाज में एक कथा प्रचलित है कि जब तुलसीदास ने यह लिख दिया–

धरे न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।

(रा0 1/85)

उनके आचार्य हनुमान जी थे जिनके निर्देश में वो राम कथा लिख रहे थे। हनुमान जी ने आकर कहा कि यह क्या किया तूने? सबको एक साथ समेट लिया? कहा कि महाराज! गलती हो गई, आप सुधार दो। कहा कि नीचे वाली पंक्ति हनुमान जी ने स्वयं लिखी है –

जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ ।।

(रा0 1/85)

उस काल में केवल वही बच सका जिसको रघुनाथ ने रख लिया। सही में भगवान् जिसको रख ले वही बच सकता है। यदि भगवान् न रखे तो कौन बच सकता है?

आपने रामायण में देवर्षि नारद की कथा तो पढ़ी होगी। देवर्षि नारद के सामने कामदेव जाता है। कामदेव को देखकर उनको क्रोध नहीं आता, काम जाग्रत नहीं होता। वे काम पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। काम पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उनको अहंकार होता है कि मैंने काम पर विजय प्राप्त कर लिया, क्रोध पर विजय प्राप्त कर लिया। पहुँच गए भगवान् शंकर के पास। अपनी सारी कथा सुना दी। भगवान् शंकर ने कहा– नारद!

बार–बार बिनवउँ मुनि तोही।
जिमि यह कथा सुनायहु मोंही।।
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ।
चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ।।

(रा0 1/127–8)

जैसे यह कथा तूने मुझे सुनाई है ऐसे ही श्रीमन् नारायण को न सुना देना। यदि प्रभु कोई प्रसंग चलावें फिर भी छिपा लेना लेकिन नारद के बात समझ में नहीं आई। नारद ने क्या सोचा जानते हो? नारद ने सोचा कि यह तो काम को जीते नहीं, न क्रोध को जीते हैं। पहले काम से प्रेरित होकर पार्वती का हाथ पकड़ लिया बाद में कामदेव को देख करके क्रोध आ गया

और उसे भस्म कर दिया। मैंने तो काम और क्रोध को जीत लिया है–

भयउ न नारद मन कछु रोषा।
कहि प्रिय बचन काम परितोषा।।

(रा0 1/127–1)

नारद जी ने सोचा कि अब उनकी यह महिमा दुनिया में उजागर हो, यह (शंकर जी) सुनना नहीं चाहते इसलिए उन्हें मना कर रहे हैं। ये चाहते हैं कि यही कामारि दुनिया में प्रसिद्ध रहें और उनकी कीर्ति दुनिया में न हो। वाह! परिणाम क्या हुआ? प्रभु की विश्वमोहिनी माया बड़ी प्रबल है। नारद जी अब पहुंच गए नारायण के पास –

छीर सिन्धु गवने मुनिनाथा।

(रा0 1/128–4)

जब नारायण के पास पहुँचे तो भगवान् ने दूर से देखा। अन्तर्यामी घट–घट की जानने वाले प्रभु समझ गए कि नारद क्यों आ रहे हैं? प्रभु उठ कर खड़े हो गए अपने आसन से। खड़े होकर के नारद जी का स्वागत किया। अब नारद जी ने प्रणाम नहीं किया प्रभु को। प्रणाम तो किया जाता है अपने से बड़े को। जब आदमी यह समझ ले कि मैं इसके बराबर का हो गया तो अब प्रणाम कौन करेगा? प्रणाम नहीं किया। भगवान् भगवान् क्यों हैं, जानते हो? कहा कि काम, क्रोध और लोभ तीनों को जीते हुए हैं। नारद ने कहा कि जो तीनों को जीता हुआ है,वह भगवान् है। अब मैंने भी तीनों को जीत लिया है। तुलसीदास जी कह रहे हैं –

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

(रा0 4/21–4,5)

कहा– हे रघुनन्दन! नारी के नेत्र रूपीं बाण जिसे व्याकुल नहीं किए, क्रोध रूपी अग्नि में जो नहीं जला, लोभ की पासी में जिसने अपने गले को नहीं बँधाया, वह तो साक्षात् आपका ही स्वरूप हो गया। नारद जी ने सोचा कि मैं काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया इसलिए अब तो मैं साक्षात् नारायण का स्वरूप हो गया। जब मैं भी नारायण यह भी नारायण तो नारायण नारायण को प्रणाम क्यों करें? इसलिए उन्होंने प्रणाम नहीं किया। भगवान् जान गए।

हरषि मिले उठि रमानिकेता।
बैठे आसन रिषिहि समेता।।

(रा0 1/128–5)

जैसे मित्र गले लग कर मिलते हैं वैसे मिले और उसी आसन पर जिस पर श्रीमन्नारायण बैठा करते हैं भवगती महामाया के साथ, नारद जी भी बैठ गए क्योंकि–

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।

(रा0 6/23 ग)

अब भगवान् ने पूछ लिया नारद जी इतने दिनों तक कहाँ रहे आप? आपके दर्शन नहीं हुए? इतना सुनना था कि नारद जी ने –

काम चरित नारद सब भाषे।
जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे।।

(रा0 1/128–7)

अपनी पूरी कथा सुना दी। यद्यपि भगवान् शंकर ने मना किया था लेकिन नहीं माने। जब सारी कथा सुना तो भगवान् ने एक बात कही। कहा कि मुनिराज!

तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान।।

(रा0 1/128)

कहा कि आपके स्मरण मात्र से ही तो काम, क्रोध और लोभ नष्ट हो जाते हैं,

नारद जी! आप में काम, क्रोध और लोभ कैसे आ सकते हैं? नारद जी ने कहा –

नारद कहेउ सहित अभिमाना।
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।।

(रा0 1/129–3)

प्रभु यह सब आपकी कृपा है लेकिन कहने में भी अन्तर होता है। एक दीनता से, भक्ति से तथा यथार्थ दृष्टि से कहता है, प्रभु सब आपकी कृपा है। फिर तो सब कुछ प्रभु पर चला जाता है। एक से कहो कि भाई! यह मकान किसने बनाया? हां, हां सब आपने ही बनाया। आपके आशीर्वाद से बन गया लेकिन अन्दर रहता है कि बनाया तो मैंने है। अब नारद को यह था कि विजय तो मैंने किया है लेकिन कह दिया कि सब आपकी कृपा से है। भगवान् जान गए कि इनके हृदय में गर्व का अंकुर उगा है। आगे जाकर माया कर दी। विश्वमोहिनी वहाँ पैदा कर दी। एक नगर बना दिया जहाँ पर शीलनिधि राजा हो गया। कहानी पढ़ी होगी आपने। वहाँ पर नारद जी जाते हैं। जो नारद जी अभी इन्द्रलोक की अप्सराओं पर दृष्टि उठा कर भी नहीं देखे थे वही नारद उस विश्वमोहिनी को देखकर विमुग्ध हो जाते हैं। नारद जी को हाथ देखने का शौक था, उन के हाथ देखने की आदत ने उनके साथ घात कर दिया। विश्वमोहिनी के हाथ में क्या लिखा था?

जो एहि बरइ अमर सोइ होई।
समरभूमि तेहि जीत न कोई।
सेवहिं सकल चराचर ताही।
बरइ सीलनिधि कन्या जाही।।

(रा0 1/131–2,3)

यह तो उसके हाथ में लिखा हुआ था लेकिन नारद उसका उल्टा अर्थ समझ गए क्योंकि जब बुद्धि विपरीत होती है तो आदमी अर्थ उलटा ही समझने लगता है। अर्थ बिल्कुल सीधा था –

सेवहिं सकल चराचर ताही।
बरइ सीलनिधि कन्या जाही।।

(रा0 1/131-4)

चराचर जिसकी उपासना करते हैं उसी को सीलनिधि की कन्या वरण करेगी। जबकि नारद जी सोचने लगे कि यह कन्या जिसका वरण करेगी चराचर उसकी सेवा करने लगेगा। नारद ने सोचा इतना अच्छा अवसर हाथ से क्यों जाने दें? फिर याद आया –

ऐहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।

(रा0 1/131)

इस स्वयंवर में जो शोभावान होगा उसी के गल में यह कन्या जयमाला डालेगी। उन्होंने जब अपना रूप देखा तो आखिर महात्मा का रूप था। सोचा इस रूप पर तो वह जयमाला डालने वाली नहीं फिर सोचने लगे कि क्या करें! आप जानते हो कि शादी–विवाह में उधार तो लेते हैं। रकम उधार लेते हैं, घोड़ी उधार लेते हैं, मुकुट उधार ले आते हैं अर्थात् बहुत सी चीज़ें उधार लेकर आते हैं। चाहे किराये पर ले लो। तब किराये पर नहीं मिलती थीं, उधार मिल जाती थी। हमारे यहाँ गांव में आज भी शादी के दिन लड़के के लिए बहुत सी चीज़ें उधार ले आते हैं लोग। अब नारद जी ने सोचा कि दुल्हा बनने के लिए कुछ उधार चीज़ें दुनिया मांगती है हम भी कुछ उधार ले लें। प्रभु का रूप उधार ले लें –

हरि सन मागौं सुंदरताई।

(रा0 1/132-1)

यदि इस समय प्रभु अपना रूप उधार द दें थोड़ी देर के लिए। थोड़ी देर की बात है जयमाला पड़ने के पश्चात् फिर कौन पूछता है? प्रभु हमें जरूर दे देंगे क्योंकि –

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ।

(रा0 1/132-2)

प्रभु के समान मेरा कोई प्यारा नहीं है और मेरे समान प्रभु को कोई प्रिय नहीं है। जब मैं प्रभु से उनका स्वरूप मांगूगा तो मुझे अवश्य दे देंगे। सोचने लगे यहाँ से क्षीर सागर जाऊँगा और वहाँ से लोटूगा तब तक तो स्वयंवर समाप्त हो जायेगा।

होइहि जात गहरु अति भाई।।

(रा0 1/132–1)

इतना दूर जाने में तो बहुत देरी हो जायेगी इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु यहीं प्रकट हो जाएं। नारद जी वहीं खड़े होकर प्रार्थना करने लगे। भगवान् वहीं प्रकट हो गए। भगवान् बड़े कौतुकी हैं, बड़े तमाशबीन हैं। यह जगत् रूपी तमाशा वही तो देख रहे हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।

(रा0 2/127–1)

हे प्रभु! यह जगत् तमाशा है और इस तमाशे को आप देखने वाले हो। इसके द्रष्टा आप हो। ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसको नचाते हैं और श्रीमन नारायण इसे देखते हैं –

प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला।।

(रा0 1/132–3)

वे परम कौतुकी हैं। प्रभु वहाँ नारद के साथ खेल करने के लिए प्रकट हो गए। नारद क्या चाहिए? नारद जी ने कहा कि बड़े मौके से आप आ गए प्रभो!

आपन रूप देहु प्रभु मोही।
आन भाँति नहिं पावौं ओही।।

(रा0 1/132–6)

थोड़ी देर के लिए आप अपना रूप मुझे दे दीजिए? कहा कि मेरे रूप को लेकर क्या करोगे तुम? कहा मैं उसे दूसरे प्रकार से पा नहीं सकता।

कहा–किसे? कहने लगे कि उसे। अरे, उसका कोई पता ठिकाना, कोई नाम,? नारद जी कहते हैं– भगवन्! आप तो जानते हो कि होने वाली स्त्री का नाम नहीं लिया जाता। हमारे यहाँ ऐसा नियम था कि पत्नी का नाम नहीं लिया जाता था –

आत्मनामो गुरोर्नामो नामो कृपणस्य च।
जेठ पुत्र कलत्रस्यच श्रेयो कार्यो न ग्रहणात्।।

अपना नाम, गुरु का नाम, बड़े पुत्र का नाम, स्त्री का नाम.जो कल्याण चाहने वाले हैं, वे बार–बार नहीं लेते। कभी मौका पड़ गया भले ले लें। यह शास्त्र का सिद्धान्त था। हमारे यहाँ गांव में कोई स्त्री का नाम लेकर नहीं पुकारते थे। अब भी नहीं पुकारते। अब शहरों में तो स्त्री पुरुष एक दूसरे का नाम लेकर ऐसे पुकारने लगे जैसे मित्र हों। नारद जी ने कहा कि मैं उसका नाम तो ले नहीं सकता इसलिए समझ लो किसके लिए कह रहा हूँ? जब 'ओही' कह कर सकेंत किया तो भगवान् समझ गए। हे नारद! जिसमें तुम्हारा परम हित होगा वही मैं करूंगा। नारद ने एक बात कह दी आखिर में–

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा।
करहु सो बेगि दास मैं तोरा।।

(रा0 1/132–7)

बस भगवान् के लिए बात बन गई। उन्होंने कहा कि तुम हित की कामना करते हो, मैं तुम्हारा परम हित करूंगा। भगवान् ने परम हित किया। नारद को शक्ल तो अपनी दे दी लेकिन मुंख बंदर का दे दिया। जो गति हुई नारद की आप जानते ही हो।

मेरे कहने का अभिप्राय कि इस कथा का सार क्या है? नारद जैसे महाज्ञानी, महायोगी, महाभक्त भी भगवान् की माया से विमुग्ध हो गए। जहाँ नारद की ऐसी गति हो गई वहां जन–सामान्य की क्या गति हो सकती है? वेद कहता है कि वह माया परमात्मा की बड़ी दुरुह है–

इन्द्रो मायाभि पर रूप ईयते।

वह परमात्मा अपनी माया से ही अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन करता है। दुर्गासप्तशती में ऋषि कहता है–

ज्ञानीनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

(दु0 स0 –1)

इसी गरुड़ के प्रसंग में कहा गया है कि वह माया बड़ी प्रबल है–

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई।
बरिआईं बिमोह मन करई।।

(रा0 7/59–5)

बड़े–बड़े ज्ञानियों के चित्त को खींच कर वह माया जबरदस्ती मोह में डाल देती है इसलिए उस प्रबल माया से बचना बड़ा मुश्किल है। भुशुण्डी जी कहते हैं– भगवन्!

ग्यान बिराग जोग बिग्याना।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती।
अबला अबल सहज जड़ जाती।।

(रा0 7/115–15,16)

पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर।।

(रा0 7/115 क)

विरक्त मतिधीर त्याग सकता है? उसमें भी संशय है। कहा–

सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्णु माया प्रगट।।

(रा0 7/115 ख)

इतनी बात कहने के पश्चात् अभी गरुड़ जी यह समझ नहीं सके कि भुशुण्डी जी का व्याख्यान देने का अभिप्राय क्या है, वे क्या कहना चाहते हैं? उसको आगे बताते हैं।

हमारे यहाँ उपासना के दो क्रम हैं। भक्ति मार्ग में जीव को भोग्य और परमाात्मा को भोक्ता माना गया है, जीव शेष है परमात्मा शेषी है, जीव अंश है परमात्मा अंशी है। ये सब सम्बन्ध हैं जीव और ईश्वर के। इन तीनों भावों में अलग–अलग सम्प्रदाय बने हैं। जहां पर जीव अंश है परमात्मा अंशी है वहां पर जीव पुत्र है परमात्मा पिता है। जहां पर जीव भोग्य है परमात्मा भोक्ता है वहां पर जीव गोपी है परमात्मा गोपाल है। आप लोगों ने सुना होगा श्रीमद भागवत का महारास का प्रसंग। वही इस सत्य का उद्घाटन करता है। उसमें प्रभु भोक्ता हैं जीव भोग्य है। उसमें समस्त जीव गोपी हैं, ये सब राधा के ही रूप हैं। वह अचिन्त्य शक्ति जो चिदात्मिका शक्ति है जिसको परा अम्बा, परा माया, परा प्रकृति कहा जाता है वह –

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

(गीता 7/5)

वह जीव भूता है। जीवभूता होने के नाते वही राधा कही जाती है। सभी जीव उसके अंश से आविर्भूत होने के नाते गोपी कहे जाते हैं और वह राधा अपनी समस्त गोपियों सहित प्रभु की भोग्या हैं और प्रभु उसके भोक्ता हैं इसलिए जीव भोग्य है और परमात्मा उसके भोक्ता हैं। वहीं पर रसिक सम्प्रदाय का उदय होता है। भारत में ऐसे कई सम्प्रदाय हैं जिनकी यही मान्यता है।

अचिन्त्य भेदा–भेद सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय आदि सम्प्रदाय हैं जिनमें यही भाव चलता है प्रिया–प्रियतम का। वृन्दावन में आज भी आपको हज़ारों महात्मा मिलेंगे जो गोपी भाव से प्रभु की उपासना करते हैं। इसी प्रकार से अयोध्या में भी मिलेंगे जो सखी भाव से प्रभु की उपासना करते हैं। यह नित्य सखी भाव है। हमारे यहाँ वैष्णों सम्प्रदाय में एक और

सम्प्रदाय है कबीर सम्प्रदाय। कबीर भी अपने आप में यही कहता है–

राम मेरे पिया मैं राम की बहुरिया।

इसी रूप से सूफी सम्प्रदाय में भी अपने आपको भोग्य और परमात्मा को भोक्ता मान कर उपासना की जाती है। ये वैदिक सम्प्रदाय हैं। यह वेद का सिद्धान्त है जिसमें जीव भोग्य है परमात्मा भोक्ता है, जीव शेष है, परमात्मा शेषी है, वहाँ पर जीव दास है परमात्मा स्वामी है। जहां जीव अंश है परमात्मा अंशी है वहाँ पर जीव पुत्र है परमात्मा पिता है। ये भाव हैं सारे। उन समस्त भावों में गोपी भाव है। आगे भक्ति भाव है।

भक्ति भाव में समर्पण होता है इसलिए इसमें भोक्ता कौन है? परमात्भा।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषःपरः ।।

(गीता 13/22)

गीता तेरहवें अध्याय में भगवान् ने इस बात को स्पष्ट किया है और पांचवें अध्याय में भगवान् ने बताया–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

जो लोग इस भाव से प्रभु की उपासना करते हैं वो भक्त हैं। भक्त अपने आप को कभी भोक्ता नहीं मानता भोग्य मानता है, अंशी नहीं मानता अंश मानता है, शेषी नहीं मानता शेष मानता है। इस भाव को आगे भुशुण्डी जी कह रहे हैं कि भगवन्! योग, विराग, ज्ञान और विज्ञान, ये सब पुरुष भाव से युक्त हैं। इस भाव से जो युक्त होते हैं उनके सामने एक प्रबल नारी भाव होता है। माया उनके लिए नारी है। नारी भाव से बचना उनके लिए बहुत मुश्किल होता है। कोई वीर विरक्त तो बच सकता है लेकिन बड़े–बड़े ज्ञानी भी उसमें मोहित

हो जाते हैं परन्तु एक बात याद रखो–

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ।
बेद पुरान संत मत भाषउँ।।

(रा0 7/116–1)

भुशुण्डी जी कह रहे हैं कि मैं यहाँ कोई पक्षपात नहीं कर रहा हूँ। आपको सुन कर लगेगा कि पक्षपात कर रहा हूँ लेकिन मैं भक्ति की महिमा गा रहा हूँ। यह पक्षपात नहीं है, यह यथार्थ है। मैं वेद, पुराण, संत, ये तीनों मत आपके सामने व्यक्त कर रहा हूँ। वेद में भी यही कहा गया है। वेद में परमात्मा का जीव के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध है। कौन–कौन सा? जीव पुत्र है परमात्मा पिता है, जीव, ईश्वर दोनों सखा हैं तथा जीव भोग्य है ईश्वर उसका भोक्ता है। तीनों भावों की व्याख्या के लिए वेद में अलग–अलग मन्त्र दिए गए हैं। पिता–पुत्र का सम्बन्ध, स्वामी–सेवक का सम्बन्ध और मित्र वा सखा का सम्बन्ध है। जहां पर भोग्य और भोक्ता का सम्बन्ध है वहां प्रिया प्रियतम का सम्बन्ध है, प्रकृति–पुरुष का सम्बन्ध है। हमारे यहाँ सांख्याचार्यों ने कहा कि भोक्ता एक वह पुरुष है। कहा कि यें जो इतने जीव हैं ये भोक्ता नहीं हैं? ये भोक्ता के प्रकाश में भोग्य की अभिव्यक्तियां हैं इसीलिए सांख्याचार्यों ने बन्धन और मुक्ति बुद्धि का माना है चेतन का नहीं। वे कहते हैं कि चेतन एक है, उसी चेतन से प्रकाशित हुई बुद्धि चेतनवत प्रतीत होती है। ये सारे क्रिया–कलापं बुद्धि में चलते हैं इसीलिए वहाँ जीव को बुद्धि कहा है। दुर्गासप्तशती में –

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः।।

(दु0स0 5/16)

जो विष्णुमाया शब्द से अभिहित है वह परमात्मा की शक्ति है। दूसरे मन्त्र में बताया है –

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।

(दुर्गा0 5/19)

वही विष्णु की माया चेतना कही जाती है। वही चेतना–

जीव भूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

(गीता 7/5)

जीव भूता है। वही परमात्मा की शक्ति है। ये जीव जितने हैं वह चेतना शक्ति की अभिव्यक्ति हैं इसलिए–

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः।।

(दुर्गासप्तशती 5/22)

यह दार्शनिक विषय है। इसको मैं यहाँ ज्यादा विस्तार से नहीं कहूंगा नहीं तो जो मैं बताने जा रहा हूँ उससे दूर हो जाऊँगा। फिर आप समझिए। यह जीव जिसे कहते हो यह बुद्धि में स्फुरित होने वाला अहं है। बुद्धि का पति परमात्मा है। भोक्ता परमात्मा है जीव भोग्य है। भोक्ता वह स्वयं नहीं हो सकता इसलिए भुशुण्डी जी कहते हैं कि यह रहस्य की बात है। आपको लगेगा कि मैं यहाँ पक्षपात कर रहा हूँ, यह पक्षपात नहीं है –

बेद पुरान संत मत भाषउँ।

(रा0 7/116–1)

मैं तो वेद, पुराण और संतों का मत बता रहा हूँ। आगे मत क्या बताते हैं?

मोह न नारि नारि के रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

(रा0 7/116–2)

कहा कि नारी का रूप देख करके नारी मोहित नहीं होती, यह अनुपम रीति है। कितनी सौन्दर्य युक्त नारी क्यों न हो और कितनी करूपा स्त्री क्यों न हो परन्तु नारी को देख कर नारी मोहित नहीं होती। नारी को देखकर पुरुष

मोहित हो जाता है। तुम कहना क्या चाहते हो? कहा कि मैं कहना यह चाहता हूँ कि –

ग्यान बिराग जोग बिग्याना।
ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।

(रा0 7/115–15)

योग, विराग, ज्ञान, विज्ञान, ये सब जितने साधन हैं, ये सब पुरुष हैं। ये नारी को देखकर के मोहित हो जाते हैं। नारी कौन? माया। कहा –

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ।
नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।

(रा0 7/116–3)

ये दोनों नारियां हैं। माया भी नारी है, भक्ति भी नारी है। न तो माया को देखकर भक्ति मोहित होती है और न भक्ति को देखकर माया मोहित होती है। यहाँ पर माया और भक्ति की कथा चल रही है। रामायण में एक जगह आया है कि जब भगवती श्रीसीता जी रंग मण्डप में चरण रखती हैं तो–

रंग भूमि जब सिय पगु धारी।
देखि रूप मोहे नर नारी।।

(रा0 7/248–4)

वहाँ पर भगवती के रूप को देख कर नर–नारी सभी मोहित हो गए और यहाँ पर आप कह रहे हो –

मोह न नारि नारि कें रूपा।

(रा0 7/116–2)

यह सम्भव कैसे होता है? तुलसीदास जी कहते हैं कि यह सीता कोई नारी नहीं हैं। सीता को नारी समझना भूल है। सीता कौन है? यह तो परमेश्वर की पराशक्ति है। जिस पराशक्ति के वशीभूत हो करके सारा विश्व नाच रहा है, जो अपने भृकुटी विलास मात्र से अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना करती है –

मृकुटि बिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई।।

(रा0 1/148-4)

जौं पटतरिअ तीय सम सीया।
जग असि जुबति कहाँ कमनीया।।

(रा0 1/247-4)

कहा कि यदि तुम सीता को स्त्रियों की तुलना में लाओगे तो भला बताओ कि दुनिया में ऐसी स्त्री है कहाँ?

गिरा मुखर तन अरध भवानी।
'रति अति दुखित अतनु पति जानी।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही।
कहिअ रमासम किमि बैदेही।।

(रा0 1/247-5,6)

कहा कि किस नारी की उपमा दोगे तुम सीता से? इसलिए जहाँ पुष्पवाटिका में भगवान् ने सीता जी को देखा वहाँ भी भगवान् कहते हैं –

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें।
छबिगन मध्य महाछबि जैसें।।

(रा0 1/264-1)

वो सखियों के मध्य ऐसे शोभित होती हैं जैसे छवियों के मध्य महाछवि हो। उसको देख कर छवि क्यों नहीं मुग्ध हो जाएगी? इसलिए सीता को नारी मानना तुलसीदास जी कहते हैं भूल है तुम्हारी। यहाँ पर जो बात है वह उस नारी की नहीं, यहाँ पर बात है माया और भक्ति की –

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ।
नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी।

माया खलु नर्तकी बिचारी।।

(रा0 7/116–3,4)

कहा कि यहाँ माया और भक्ति दोनों नारी वर्ग हैं। दोनों परमात्मा की शक्ति हैं। माया कौन है और भक्ति कौन है –

देखा जीव नचावइ जाही।
देखी भगति जो छोरइ ताही।।

(रा0 1/202–4)

एक माया है जो जीवों को नचाती है और दूसरी भक्ति है जो जीवों को छुड़ाती है। तुलसीदास जी लिखते हैं कि माया के भी दो भेद हैं –

तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।

(रा0 3/15–4)

उसमें एक विद्या माया है दूसरी अविद्या माया है। अविद्या माया वो है जो जीव को नचाती है और विद्या माया वो है जो जीव को छुड़ाती है। रामायण में दो बड़ी विचित्र चौपाईयां हैं। भगवान् श्रीराम चले जा रहे हैं जंगल में। आगे–आगे राम हैं पीछे–पीछे लक्ष्मण हैं,उनके मध्य में भगवती सीता जी हैं। उनके स्वरूप को देख करके कवि अपनी भावना को व्यक्त करते हुए कह रहे हैं –

आगे रामु लखनु बने पाछें।
तापस बेष बिराजत काछें।।
उभय बीच सिय सोहित कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

(रा0 2/128–1,2)

कहा आगे–आगे राम, पीछे–पीछे लक्ष्मण और बीच में श्रीसीता जी ऐसे सुशोभित होती हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया। अरे कहा–महाराज! आप यह क्या अनर्थ कर दिए? ब्रह्म और जीव के बीच में माया सोहती है या

मोहती है? कहा– नहीं, मोहती है।

नाथ जीव तव मायाँ मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेंहिं छोहा।।

(रा0 4/3–2)

कहा कि माया तो मोहती है सोहती कहाँ है, भगवन्? कहा कि नहीं, माया मोहती भी है सोहती भी है। कौन सी माया मोहती है कौन सी सोहती है? कहा कि अविद्या माया मोहती है विद्या माया सोहती है।

तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा।
जा बस जीव परा भवकूपा।।

(रा0 3/15–4,5)

यह अविद्या माया है जो मोहती है और विद्या माया–

एक रचइ जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।

(रा0 3/15–6)

यह जगत् जननी है, जगत की रचना करने वाली है, वह सोहती है मोहती नहीं। आप यह समझिए पिता और पुत्र में मां मोहती है या सोहती है? क्या कहेंगे आप? सोहती है। पिता और पुत्र के बीच पत्नी सोहती है कि मोहती है? मोहती है। कल मैं इन्हें बता रहा था कि भई! जब देवी आती है, घर का सारा हाल–चाल देख लेती है, वह सोचती है कि हमारा पति तो मेहनत करने वाला है और परिवार में बहुत लोग खाने–पीने वाले हो गए हैं। यदि ये कमा कर अकेले हमें दे तो हमारे पास बहुत धन हो जाएगा। तो वह कान में पति के तिराक्षर मन्त्र फूंकती है। यह चौंक गया कि वह तिराक्षर मन्त्र कौन सा होता है? मैंने बताया –अलग। जहाँ यह कान में फूंका तहाँ पिता और पुत्र के

बीच में खंदक हो जाता है, खाई नहीं। तो वो पिता और पुत्र के बीच में मोहती है सोहती नहीं लेकिन मां बीच में सोहती है। तो जगत् जननी भगवती श्री सीता जीवों की मां हैं–

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

(गीता 7/5)

वह जीवभूता है, जीव उन्हीं से उत्पन्न होते हैं –

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता।

(गीता 14/4)

भगवान् कहते हैं कि वह महद् ब्रह्म भगवती जगत् जननी जीवों की मां है, मैं सबका पिता हूँ। माँ बीच में सोहती है और पत्नी बीच में मोहती है। पत्नी कौन है? भोग्या। अविद्या माया अष्टधा प्रकृति है –

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

(गीता 7/4,5)

यह अष्टधा प्रकृति भोग्या है। बुद्धि से लेकर शरीर तक यह सब किसके लिए हैं? जीव के भोग के लिए है इसलिए जब जीव इसमें आसक्त होता है तो ये परमात्मा से जीव को अलग कर देते हैं। ये भोग्य होने के नाते मोहते हैं। यह अष्टधा प्रकृति मोहती है और उसके बीच में जो परा अम्बा है वह जीवों को जन्म देने वाली परमात्मा की चिदात्मिका शक्ति जो है वह सोहती है। जिस समय जीव में उस चिदात्मिका शक्ति का प्रकाश होता है तब वह अपने प्रभु को पहचान लेता है। जैसे माता ही पुत्र को उसके पिता का परिचय देती है इसी रूप से वह चिदात्मिका शक्ति ही जीव को परमात्मा का परिचय देती है। केनोपनिषद् में आप इसको पढ़ सकते हैं। जहाँ पर इन्द्र विमोहित हो जाता

है और अग्नि और वायु परास्त हो करके उस पक्ष से आते हैं। इन्द्र जब आखिर में जाता है तो यक्ष अन्तर्धान हो जाता है और वहाँ पर कौन प्रकाशित होती है? हेमवती भगवती प्रकट होती है। वही भगवती इन्द्र की गुरु बनती है। वही भगवती इन्द्र को ब्रह्म का बोध कराती है इसलिए पिता और पुत्र के बीच में भगवती सोहती है। यह विषयात्मिका जो अष्टधा प्रकृति है अविद्या माया यह मोहती है। एक जगह तुलसीदास जी ने लिंखा है –

नाथ जीव तव मायाँ मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।

(रा0 4/3–2)

यह अविद्या माया के लिंए है। जहाँ पर लिखा है –

उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

(रा0 2/123–2)

वह विद्या माया के लिए है। वही विद्या माया यहाँ भक्ति शब्द से कही गई है–

उदभ्व स्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

(रा0 1 श्लोक 5)

वह राम वल्लभाम् कौन हैं? तुलसीदास जी कहते हैं कि वह भक्ति है। वह भक्ति स्वरूपा है इसीलिए भगवती श्रीसीता जी भक्ति स्वरूपा हैं, वो श्री स्वरूपा हैं और माया जो संसार को अभिव्यक्त करने वाली है वह संसार रूपा है। जो मोहने वाली शक्ति है वह माया है। यहाँ पर–

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ।
नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।

(रा0 7/116–3)

ये दोनों नारी वर्ग हैं –

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी।
माया खलु नर्तकीबिचारी।।

(रा0 7/116-4)

श्री जो है, भक्ति जो हैं, यह प्रभु को प्रिय है और माया नटनी है, नर्तकी है, यह नाचती रहती है। एक के पास नहीं अनेकों के पास नाचती रहती है। यही तो कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मैं लक्ष्मीपति बन जाऊँ। हमारे यहाँ एक मुस्लमान संत हुए हैं रहीम खान-खाना, उन्होंने लिखा है -

रहिमन नारी गरीब की, अपनी कहे न कोए।
हरि पतनी अपनी कहे, तो क्यों न फज़ीहत होए।।

कहा कि गरीब की स्त्री को भी अपनी स्त्री कहना मुश्किल हो जाता है और दुनिया के लोग अपने आपको लक्ष्मी का पति मानना चाहते हैं फिर फज़ीहत क्यों नहीं होगी?

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भक्ति नारी रूपा है तथा ज्ञान, विज्ञान, योग और विराग, ये सब पुरुष रूप हैं। साधन में यदि पुरुष का आश्रय लोगे तो पुरुष में अहं की प्रधानता होती है। अहं की प्रधानता होने के नाते प्रभु की माया उसे दबोच लेती है। जहाँ भक्ति का सहारा लेते हैं उसमें अहं नहीं रहता उसमें त्वम् की भावना होती है। एक में होता है अहमस्मि दूसरे में होता है त्वमेवसि। जहाँ पर त्वमेवसि- तू ही है मैं नहीं हूँ, यह भावना है, यह भक्ति मार्ग है और जहाँ पर अहमस्मि, मैं ही हूँ, मेरे सिवा कुछ नहीं है, यह ज्ञान मार्गी है। ज्ञान मार्ग पुरुषत्व से युक्त है।

नारी का अर्थ होता है समर्पिता इसलिए वह समर्पण करती है प्रभु को। उसमें भोक्तां प्रभु है आप भोक्ता नहीं हैं। वहाँ भोक्ता आप हैं प्रभु नहीं। यह दोनों में भेद है इसलिए भुशुण्डी जी कहते हैं कि नारी नारी को देख कर मोहित नहीं होती पुरुष नारी को देख कर मोहित हो जाता है अर्थात् जो भक्ति का सहारा लिए हैं वे माया को देखकर मोहित नहीं होते लेकिन जो

ज्ञान का सहारा लिए हैं वो माया को देख कर मोहित हो जाते हैं। इन दोनों में यही अन्तर होता है और इसका परिणाम क्या होता है? कहा कि यह तो मैं कल बताऊँगा।

हरि ॐ तत्सत्

3

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् श्रीराम की करुणा आप सभी के लिए कल्याणप्रद हो, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। आज हमारे इस ज्ञान सत्र का तीसरा दिन है। परमभागवत संत शिरोमणि भुशुण्डी जी अपने परम प्रिय अतिथि और शिष्य पक्षीराज गरुड़ को भक्ति और ज्ञान का रहस्य समझा रहे हैं। प्रसंग बड़ा उत्तम है। शताब्दियों से उलझी हुई गुत्थी को गोस्वामी जी ने इस संवाद के माध्यम से सुलझाया है। भक्ति श्रेष्ठ है वा ज्ञान, इस सम्बन्ध में आज से शताब्दियों पूर्व भारत में एक बहुत बड़ा संघर्ष प्रारम्भ हुआ और यह संघर्ष यहाँ तक बड़ा कि हिंसा के रूप में भी परिणत हो गया। हिंसा के द्वारा, शक्ति के द्वारा, बल के द्वारा किसी सिद्धान्त की श्रेष्ठता साबित नहीं की जा सकती। तत्कालीन भक्ति और ज्ञान के अनुयायियों में अपने-अपने सिद्धान्त को श्रेष्ठ बताने की होड़ में इस प्रकार के संघर्ष

हुए। भारत का इतिहास उस संघर्ष की दु:खद घटनाओं से कलंकित हुआ। यह सत्य था कि जो सही में भक्त नहीं थे, जो सही में ज्ञानी नहीं थे, वही लोग भक्ति और ज्ञान को शक्ति के द्वारा प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्ष में प्रवृत्त हुए! ज्ञानियों की घोषणा थी कि यह जगत् मिथ्या है, भ्रम है और केवल एक आत्मा, परमात्मा वा ब्रह्म ही सत्य है। भक्तों का यह कथन था कि यह जगत् मिथ्या नहीं है, यह परमात्मा की उपासना की सामग्री है, परमात्मा के प्रेम का धाम है तथा यह प्रभु की लीला है। लीला, नाम, रूप और धाम, ये चारों नित्य हैं, शाश्वत हैं, सनातन हैं और सच्चिदानन्दमय हैं, इसके लिए वेद के मन्त्रों का प्रयोग करके वे महापुरुष उसका समर्थन करते थे। दोनों पक्षों के पास अपने-अपने तर्क थे, अपनी-अपनी युक्तिया थीं लेकिन वेद वाक्य वा प्रस्थानत्रयी का कोई ऐसा वाक्य नहीं था जो जगत् को मिथ्या, भ्रम और शून्य घोषित करता है इसलिए ज्ञान मार्गी अपने सिद्धान्तों के समर्थन में वेद और पुराण के वाक्य प्रस्तुत करते थे। यह संघर्ष बहुत वर्षों तक चलता रहा।

जिस समय गोस्वामी तुलसीदास जी का आविर्भाव हुआ था उसी समय एक और महापुरुष भारत में उत्पन्न हुए। उनका नाम था मधुसूदन सरस्वती। तुलसीदास जी भक्ति मार्ग के आचार्यों की परम्परा में से थे ऐसे ही यह महापुरुष ज्ञान मार्गियों की परम्परा में हुए थे। गोस्वामी जी के समय में ही वो काशी में निवास करते थे। वे जगत्गुरु की गद्दी पर बैठे हुए थे। उनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन दोनों महापुरुषों की कृपा से ज्ञान और भक्ति का झगड़ा समाप्त हुआ। मधुसूदन सरस्वती ने भगवद्गीता पर एक स्वतन्त्र भाष्य लिखा जिसको मधुसूदनी कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस की रचना की। तत्कालीन विद्वानों ने इस पर आक्षेप किया। गोस्वामी जी का कथन था –

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

(रा0 1/श्लोक7)

विद्वानों ने कहा कि ऐसे कैसे हो सकता है कि एक भाषा के ग्रंथ में नाना पुराण निगमागम का सिद्धान्त निहित हो जाए? इसकी यथार्थता किसके द्वारा कराई जाए? इसका प्रमाण पत्र कौन दे? आप जानते हो जो आपके विचारों के अनुयायी हैं वे आपके विचारों का समर्थन करने में पीछे नहीं रहेंगे लेकिन तुलसीदास जी ने लिखा कि सही माने में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तो वे हैं जिनको पढ़ करके, सुन करके आनन्द की अनुभूति हो, जिनको विरोधी वर्ग के लोग भी समर्थन दें। गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ की प्रमाणिकता के समर्थन के लिए उस समय के विरोधी ग्रुप के आचार्य मधुसूदन सरस्वती को चुना। उन्होंने कहा कि इसकी यथार्थता के प्रमाण के लिए मैं इस ग्रथ को मधुसूदन सरस्वती के चरणों में समर्पित करता हूँ। मधुसूदन सरस्वती ने जब रामायण पढ़ी तो उन्होंने रामायण के ऊपर बड़ा सुन्दर श्लोक लिखा कि यह इस काशी के आनन्द कानन में एक चलता-फिरता तुलसी का पौधा है –

आनन्द कानने जंगमस्तुलसी तरु कविता
मंजरी शाखा रामः भ्रमरः भूषिता।

जिसकी तुलसी की मंजरी है और जिसके ऊपर राम रूपी भ्रमर हमेशा मंडराता रहता है। यह लिखकर उन्होंने उस रामचरित मानस के ऊपर मोहर लगा दी अर्थात् प्रमाणित कर दिया कि सही में राम तत्त्व के विवेचन में इससे श्रेष्ठ और कोई ग्रन्थ नहीं हो सकता।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने ज्ञान और भक्ति की तुलना करते हुए दोनों के यथार्थ स्वरूप को प्रतिष्ठित किया है। उसी समय मधुसूदन सरस्वती ने भी अपने भाष्य में जगत् की यथार्थता और भक्ति की महत्ता का वर्णन किया। यह श्लोक मधुसूदन सरस्वती विरचित है जिसमें उन्होंने तुलसी के इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि यह संसार मिथ्या नहीं परमेश्वर श्रीराम का स्वरूप है।

तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा –

बिस्व रूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।

(रा0 6/14)

यह सारा विश्व परमात्मा का स्वरूप है, इसमें मिथ्या कुछ नहीं है। इसी बात को मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं अपने ग्रन्थ में –

जगदेव हरि हरिरेव जगत जगतो हरि तो नहीं भिन्न तनु।
इति यस्य मति परमार्थ गति स नरो भवसागर मुत्तरति।।

वो कहते हैं कि जगत् हरि का स्वरूप है, हरि ही साक्षात् जगत् के रूप में अवतरित हुए हैं, ऐसी जिसकी मति हो गई है, वही यथार्थ में परमार्थ तत्त्व का ज्ञाता है और वही संसार से मुक्त होता है। यह मान्यता कि जगत् परमेश्वर का स्वरूप है, भक्ति मार्ग है। भक्ति मार्ग में परमेश्वर की सत्ता के सिवा किसी अन्य की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया। उसमें जो माया है वह परमेश्वर की शक्ति है। परमेश्वर से भिन्न नहीं है। वह माया अनिर्वचनीय नही है। अनिर्वचनीय क्यों नहीं है? कहा कि वह परमेश्वर की शक्ति है, यही उसका निर्वचन है। निर्वचन माने किसी तत्त्व की व्याख्या करना। माया का निर्वचन क्या है? परमात्मा की शक्ति की व्याख्या। भगवान् स्वयं कहते हैं –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीता 7/14)

यह मेरी दैवी माया है अर्थात् दिव्य माया है गुणात्मिका शक्ति और मेरी यह माया बड़ी दुष्कर है। इससे पार जाना सरल नहीं है। इस माया से वही पार जा सकता है जो मेरी शरण में आ जाए। ज्ञान से भ्रान्ति की समाप्ति होती है। अज्ञान के नाश के लिए ज्ञान ही साधन है। बन्धन के दो हेतु हैं एक नहीं है। एक व्यष्टिगत बन्धन दूसरा समष्टिगत बन्धन। व्यष्टिगत बन्धन का नाम है मोह वा अज्ञान। अज्ञान के नाते हमने अनात्मा में आत्म बुद्धि करली।

शरीर को आत्मा मान लिया –

अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

(यो0 सू0 2/5)

शरीर को हमने आत्मा मान लिया, अपवित्र शरीर को पवित्र मान लिया, नाशवान् शरीर को अविनाशी मान लिया और मल–मूत्र के आकर इस शरीर को हमने अपने जीवन का सर्वस्व मान लिया। यह क्या है? कहा, यह अविद्या है। इस अविद्या का नाश कैसे होगा? भक्त कहता है कि इस अविद्या का नाश ज्ञान द्वारा होगा लेकिन यदि तुम शरीर को शरीर मान लो, आत्मा को आत्मा मान लो तो क्या होगा? तुम अविद्या से मुक्त होंगे लेकिन माया से मुक्त नहीं होंगे। अविद्या क्या है? अविद्या माया का कार्य है स्वयं में माया नहीं है। यह बात ध्यान से समझना आप लोग। 'न विद्यतेइति अविद्या'। जो एक रस नहीं, एक रूप नहीं, उसको अविद्या कहते हैं। यह कार्य है। कारण क्या है? कारण तो वह माया है। माया को ही विद्या कहा जाता है। यह जो अविद्या है यह कार्य जगत् है। इसमें जो अनित्य को नित्य मान लेने की, अपवित्र को पवित्र मान लेने की, अनात्मा को आत्मा मान लेने की, दु:खमय को सुखमय मान लेने की भ्रान्ति है, वह विवेक से चली जाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं लेकिन तुम्हारा विवेक उस माया को दूर करने में सक्षम नहीं है। तुम्हारा ज्ञान उस माया को दूर करने में सक्षम नहीं है। जिस बुद्धि मे तुम्हारा वह ज्ञान उदय हुआ है, वह बुद्धि उस माया का कार्य है। वह बुद्धि की वृत्ति ही सोऽहमस्मि रूप में प्रकट हुई है –

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।

(रा0 7/118–1,2)

यदि आत्म अनुभव का प्रकाश हो जाए तब भेद और भ्रम नष्ट हो जाएंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। इससे तुम भ्रम से मुक्त हो सकते हो लेकिन माया से मुक्त नहीं हो सकते। माया भ्रम नहीं है। माया क्या है? कहा कि भ्रम को उत्पन्न करने में कारण जो अविद्या है, उस अविद्या का भी कारण माया है। अविद्या माने कार्य जगत्। वेद में उस परमेश्वर की शक्ति के चार चरण बताये गए हैं– अविद्या, विद्या, आनन्द और तुरीय। इन्हीं को ऋग्वेद में कहा गया है –

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि।।

(पुरुष सू0 3)

एक चरण (पाद) में यह सारा विश्व है। वह कौन सा पाद है? अविद्या पाद। तीन पाद अमृतमय हैं। अमृतमय कौन से तीन पाद हैं? विद्या, आनन्द और तुरीय पाद। विद्या अविनाशी तत्त्व है। 'विद्यते इति विद्या'। वह तुम्हारे ज्ञान से नष्ट होने वाली नहीं है। उस विद्या को कौन दूर करेगा? वही विद्या माया त्रिगुणात्मिका शक्ति।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीता 7/14)

भगवान् कहते हैं कि उससे मुक्त होने का तो केवल एक ही रास्ता है। वह कौन सा? मेरी शरण में आ जा। भक्ति के आचार्यों ने कहा कि ज्ञान की महिमा है। ज्ञान तुम्हारे अज्ञान को दूर कर देगा। अज्ञान से मुक्त होने पर तुम ज्ञानी तो बन जाओगे लेकिन ज्ञानी बन कर तुम माया से मुक्त हो जाओगे, यह तुम्हारी भ्रान्ति है। ऐसा नहीं हो सकता। भगवान् कहते हैं कि जो मेरी शरण में आएगा वही मेरी माया से दूर हो सकता है, दूसरा कोई साधन नहीं है। यदि ज्ञान इसका साधन होता तो भगवान् बताते कि ज्ञान के द्वारा मोह चला जाएगा। भगवान् से पूछा कि क्या ज्ञान के द्वारा माया से नहीं तर सकता?

उन्होंने कहा कि नहीं –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

(गीता 7/19)

बहुत जन्मों के बाद भी ज्ञानी को मेरी ही शरण में आना पड़ेगा और कोई दूसरा चारा नहीं है। बिना भगवत् शरणागति स्वीकार किए कोई भी इस माया को पार नहीं कर सकता। यह बात याद रखिए। माया तुम्हारे बस की नहीं है। माया तुम्हारे अधिकार में नहीं है, न तुम्हारे ज्ञान के अधिकार में है और न तुम्हारी बुद्धि के अधिकार में है। तुम माया की ही सन्तान हो, भला तुम उसको कैसे दूर कर सकते हो? हां, उसकी कृपा हो जाय, भगवत् अनुग्रह हो जाए, भगवान् की शरणागति स्वीकार कर लो, माया अपने आप दूर हो जाएगी। हम देखते हैं यजुर्वेद का ऋषि ज्ञान और विज्ञान की सारी महिमा का गान करता हुआ चला जा रहा है। पूरी अनुभूति करता हुआ ऐसी स्थिति में पहुंच गया जहाँ पर –

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतो-
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

(ईशा0 8)

उसने उस परमावस्था को प्राप्त कर लिय, विद्या और अविद्या को जान लिया, सम्भूति और असम्भूति सबको जान लिया। जानने के पश्चात् अज्ञान का पर्दा उसका फट गया लेकिन जब आगे गया और देखा तो उसका सारा ज्ञान, उसकी सारी समझ केवल उसके तक सीमित रह गई। विद्या के आवरण को, उस माया के आवरण को दूर करने के लिए अपने आपको अक्षम पाया। यजुर्वेद का सिद्धान्त यह कहता है कि आखिर में तुम्हारे पास प्रार्थना के सिवा और कोई चारा नहीं है। अन्त में वह ऋषि

कहता है –

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

(ईशा0 15)

हे परमात्मा! अपने बूते से अपनी साधना से यहाँ तक आ गया हूँ, अब शोक मोह से मुक्त हो गया हूँ, उस दिव्यात्मा में प्रतिष्ठित हो गया हूँ लेकिन अभी हमें तुम्हारा साक्षात्कार नहीं हुआ। आत्म साक्षात्कार होने के पश्चात् परमात्म साक्षात्कार होता है। गीता में भी भगवान् ने यह बात बताई है –

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।

(गीता 5/21)

वह आत्म सुख को प्राप्त कर लेता है लेकिन जब वह बाद में ब्रह्मयोग से युक्त होता है तब वह अक्षय सुख का भाजन बनता है। मुक्ति के लिए ज्ञान है लेकिन मायातीत होने के लिए भगवद् भक्ति। उसके सिवा कोई चारा नहीं है। भगवान् से प्रार्थना करो कि हे भगवान्! आप अपनी कृपा से, अपनी करुणा से, अपने अनुग्रह से, अपनी माया को समेट सकते हैं। हमारे बूते की बात नहीं है कि भगवान् की माया को हम अपने डण्डे से हटा दें। असम्भव है। यह खास भेद है ज्ञान और भक्ति मार्ग में। भक्तों ने कहा कि तुम्हारा अज्ञान नष्ट हो जाए तो क्या तुम माया को पार कर जाओगे? असम्भव है। तुम्हारा अज्ञान मिट गया तुम ज्ञानी बन गए, तुम्हें जगत् के यथार्थ का बोध हो गया, बहुत अच्छी बात है, इससे तुम माया से अतीत हो गए क्या? कहा, नहीं हो गये। एक ज्ञानी नहीं बड़े–बड़े ज्ञानियों की कथा, तत्त्वज्ञ ऋषियों की कथा हमारे पुराणों में भरी हुई है। कल सुनाई थी न नारद जी की गाथा। उनसे बड़ा ज्ञानी और कौन होगा?

जिस प्रसंग को भुशुण्डी जी सुना रहे हैं, वह किसको सुना रहे हैं?

महाज्ञानी गरुड़ जी को। वो भगवान् की माया से पार नहीं जा सके। छोटी सी घटना थी, भगवान् राम रणक्षेत्र में रण की शोभा बढ़ाने के लिए मेघनाद के पाश में बँध गए। युद्ध की शोभा तो इसी में है कि कभी हम हारें कभी तुम हारो। यदि हम हमेशा जीतते ही जाएं तो युद्ध की शोभा काहे की? फिर तो भगवान् की शोभा हो गई। भगवान् ने तो रण की शोभा बढ़ाने के लिए –

रण सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो।
नागपास देवन्ह भय पायो।।

(रा0 6/73–12)

नागपाश में बँध गए। भगवान् तो रण क्रीड़ा के लिए नागपाश में बँध गए। देवता लोग सोचने लगे कि ये सही में नागपाश में बँध गए हैं। अब नागपाश से कैसे छूटेंगे, कौन छुड़ायेगा? बड़ी गम्भीर समस्या आ गई। हनुमान जी पहुँच गए गरुड़ के पास–

आने खगेस तबै हनुमान जु,
बंधन काटि सुत्रास निवारो।

(संकट मो0 6)

प्रार्थना करने लगे। गरुड़ जी प्रभु की इस लीला की विचित्र अवस्था को देख करके मारुति की प्रार्थना सुन करके आ गये। बँधन काट दिया। तुलसीदास जी लिखते हैं –

बंधन काटि गयो उरगादा।
उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा।।

(रा0 7/58–5)

बँधन तो काट दिया लेकिन वाह रे प्रभु की माया, बड़ी प्रबल है तू ! बँधन काटने की खुशी नहीं हुई बल्कि हृदय मे एक विषाद, एक दु:ख उत्पन्न हो गया केवल यह सोचकर कि –

भव बँधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।।

(रा0 7/58)

जिस राम के नाम का स्मरण करके प्राणी संसार से मुक्त हो जाता है, संसार बँधन से परे हो जाता है, उसी राम को यह तुच्छ निशाचर मेघनाद नागपाश में बाँध दिया? जो त्रिलोकी का नियन्ता है, उसको पृथ्वी का एक तुच्छ जीव बन्धन में डाल दे तो यह आश्चर्य की बात नहीं तो और क्या है? तुलसीदास जी लिखते हैं कि इतना विचार आते ही माया आकर सिर पर स्वार हो गई। सोचने लगा कि पहले तो विष्णु भगवान् कभी-कभी राम रूप मे अवतरित होते थे लेकिन अब की तो मैंने सुना था कि यह राम विष्णु का अवतार नहीं, नारायण का अवतार नहीं, यह तो परब्रह्म का अवतार हैं। विचार करने लगा -

माया मोह पार परमीसा।

(रा0 7/58-7)

जो माया और मोह से परे परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर हैं, परम ईश हैं-

सो अवतार सुनेउँ जग माहीं।
देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।।

(रा0 7/58-8)

मैंने सुना है कि उस परमात्मा परमेश्वर ने अवतार लिया है ईश्वर ने नहीं लेकिन उस परमेश्वर का तो कोई प्रभाव नहीं देखा। उस परमेश्वर के नाम में तो परमेश्वर से ज्यादा शक्ति है। नाम जप करके लोग छूट जाते हैं लेकिन परमेश्वर स्वयं बँधन में पड़ा हुआ है। यदि मैं न आया होता तो परमेश्वर का राम नाम सत् हो गया होता। मैं न छुड़ाता तो आज वह निशाचर इनको खत्म किए था। यह विचार आते ही बैकुण्ठ धाम की तरफ जाने की बजाए लौट गए दूसरी तरफ। रास्ते में नारद जी मिल गए। नारद जी ने

देखा, कहा – पक्षीराज! आप बड़े घबराए हुए से दिखाई दे रहे हो? कहा – भगवन् मेरे को एक संशय है। कहा कि जिस राम को मैं मुक्त करके आ रहा हूँ, वे राम कौन हैं? मुनिराज बताईए। मुनिराज ने कान में अंगुली लगाई और कहा –

जेहिं बहु बार नचावा मोही।
सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही।।

(रा0 7/59–6)

जिस माया ने मुझे अनेकों बार बंदर की तरह नचाया है उसी माया ने आज तुम्हें पकड़ लिया है। यह छूत की बिमारी है। मेरे से दूर ही रहो तुम। मेरे पास न आओ। कहा कि फिर कहाँ जाऊँ? नारद जी ने कहा कि मैं इस माया के सामने हमेशा सर झुकाकर मूर्ख बना रहा। मैं मूर्खानन हूँ, मैं इस माया के सामने कुछ नहीं इसलिए तुम यदि इस माया को जानना चाहते हो तो –

चतुरानन पहिं जाहु खगेसा।

(रा0 7/59–8)

तुम चतुरानन के पास जाओ। यही माया थी जो राजकुमारी बनकर सामने आ गई थी। दूसरा अर्थ इसका है कि मैं तो एक मुख वाला हूँ, मैं कहाँ से इसकी महिमा का गान कर सकता हूँ। तुम चार मुख वाले के पास जाओ। नारद जी की बात सुनकर गरुड़ जी अब ब्रह्मलोक को चले गए। ब्रह्मदेव ने देखा कि गरुड़ आ रहे हैं, बड़े व्यग्र हैं। ब्रह्मदेव ने पूछा– पक्षीराज! क्या बात है? गरुड़ ने कहा – भगवन् ! मुझे एक शंका है। बोले – क्या ? कहा कि ये जो लंका में युद्ध कर रहे हैं राम, ये कौन हैं? ब्रह्मदेव ने कहा कि अच्छा तुम भी फंस गए?

अग जगमय जग मम उपराजा।
नहीं आचरज मोह खगराजा।।

(रा0 7/60–5)

कहा कि सारी सृष्टि मैंने उत्पन्न की है। समस्त सृष्टि का कर्त्ता–धर्ता होते हुए भी जब यह माया मुझे नचा देती है, तुम्हें पकड़ लिया, इसमें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है इसलिए मैं तो कुछ नही कर सकता। कहने लगे-

जान महेस राम प्रभुताई।।

(रा0 7/60–6)

राम की यथार्थ प्रभुता को मैं नही जानता, शंकर जी जानते हैं, वो तुम्हारा समाधान कर देंगे। अब गरुड़ जी ब्रह्मलोक से चले कैलाश की तरफ। जब कैलाश की तरफ चले तो रास्ते में शंकर जी मिल गए। मिलते हुए उन्होंने प्रणाम किया। उन्होंने पूछा– खगेश! क्या हो गया बड़े व्यग्र दिखाई दे रहे हो? कहा कि भगवन् मुझे एक आशंका है। बोले क्या? कहा कि ये जो राम लंका में युद्ध कर रहे हैं, कौन हैं? शंकर जी मुस्कराए और कहा–

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही।
कवन भाँति समुझावौं तोही।।

(रा0 7/61–3)

हे गरुड़ जी ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा विकट है और मिले हो रास्तें में। इतने महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर कहीं रास्तें में चलते–चलते दिया ज़ाता है? फिर इसका समाधान कहाँ होगा? कैसे होगा? कहा –

तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

(रा0 7/61–4)

जब बहुत काल तक सत्संग करें तब कहीं मोह और भ्रम का नाश होता है। दो–चार दिन के सत्संग से ये नष्ट नहीं होते ! मेरे पास तो समय नहीं है। मैं तो जा रहा हूँ। रास्ते में तुम्हें समझा नहीं सकता इसलिए जहाँ नित्य कथा होती है, वहाँ जाओ। पूछा– भगवन्! वह नित्य कथा कहाँ होती है? भगवान् शंकर ने ठिकाना बता दिया कि नीलगिरी पर्वत पर भुशुण्डी जी का आश्रम

है, वहाँ चले जाओ। पार्वती ने बीच में प्रश्न कर लिया कि भगवन् सारी बातें मुझे आपकी सत्य लगी लेकिन यह हमें सत्य नहीं लग रही है। कहा कि देवी इसमें तुम्हें असत्य क्या दिखाई दे रहा है? भगवती ने कहा कि यदि आप चाहते तो क्षण भर में उसके संशय को दूर कर सकते थे। मोहान्धकार को दूर करने में आप जैसे सामर्थ्यवान् के लिए कितना विलम्ब लगना था? भगवान् शंकर ने सोचा कि यह ऐसे नहीं मानेगी इसलिए उन्होंने इसका समाधान करने का दूसरा रास्ता अपनाया। कहा कि तुम्हारी बात सत्य है, मैं समाधान कर सकता था लेकिन नहीं किया। क्यों नहीं किया, भगवन्? इसमें क्या कारण था? कहा कि कारण है –

ताते उमा न मैं समुझावा।
रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा।।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना।
सो खोवै चह कृपानिधाना।।

(रा0 7/62–7,8)

मैंने भगवान् की कृपा से ध्यानस्थ होकर देख लिया कि इनको कभी अभिमान हुआ था और उस अभिमान को भगवान् दूर करना चाहते हैं। उस अभिमान को दूर करने के लिए मेरे जैसा उपदेष्टा ठीक नहीं। क्यों कारण क्या? कहा कि यदि मैं इसका अभिमान दूर भी कर देता तो भी इसका यह अभिमान बना रहता कि मेरे गुरु तो भगवान् शंकर हैं, किसी ऐरे–गैरे का मैं शिष्य नहीं हूँ। भगवान् शंकर ने मेरा मोह दूर किया है। वह अभिमान उसे भगवत्ता से नीचे न लाता। व्यक्ति का अभिमान कब दूर होता है? कहा कि जब अपने से निम्न श्रेणी वाले के पास जाकर अपने आपको समर्पित करे तब उसका अभिमान दूर होता है। अभिमान दूर करने के लिए सही में इससे उत्तम और कोई रास्ता नहीं था। वास्तव में गरुड़ जी ने भुशुण्डी जी के साथ अभिमान किया था।

सत्योपाख्यान की यह कथा है कि भगवान् जब बालरूप में क्रीड़ा करने लगे तो –

इष्टदेव मम बालक रामा।
सोभा बपुष कोटि सत कामा।।

(रा0 7/75-4)

पांच वर्ष तक भुशुण्डी जी बालक रूप में भगवान् के साथ क्रीड़ा करते रहे हैं क्योंकि वे भुशुण्डी के इष्टदेव हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है –

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ।।

(रा0 1/203)

भगवान् अपने मुँह में दही और ओदन लगा करके किलकारी मार कर दौड़ते जिससे वह दही–भात नीचे गिर जाए। जब गिर जाता तो –

जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ।।

(रा0 7/75)

उसे भुशुण्डी जी उठा लेते और खा लेते। एक समय की बात जब गरुड़ जी को पता चला कि ब्रह्म का अवतार होने वाला है तो गरुड़ जी को भी चाह हुई कि विष्णु की सेवा तो मैं करता रहता हूँ, अब की ब्रह्म का अवतार हो रहा है; मैं भी चल करके कुछ आनन्द लूँ। ब्रह्म का अवतार हुआ है ऐसा जान कर गरुड़ जी भी आ गये वहाँ। गरुड़ जी ने देखा कि भगवान् का जूठन जो गिरता है वह तो यह कौवा खा जाता है। यह पक्षियों में नीच जाति का कौवा भगवान् के जूठन का अधिकारी कैसे हो गया? ऐसा सोच कर गरुड़ जी ने उसको डाँटा। काग, खबरदार, यह प्रभु का प्रसाद है, इसको स्पर्श करने का तुम्हारा अधिकार नहीं है। काग संकुचित हो गया। प्रभु के अनन्य चरणानुरागी कागभुंशुण्डी के हृदय में न तो क्रोध आया और न आमर्ष। आप उनकी कथा पहले सुन चुके हैं कि ऋषि ने जब श्राप दिया था तब भी

उनके हृदय को भय और शोक नहीं हुआ। तब भी वे ऋषि के चरणों में प्रणाम करके, श्राप को शीष पर धारण करके हर्षित होकर चल दिए। भला गरुड़ के इस प्रकार के व्यवहार से काग जी के हृदय में आमर्ष क्या आना था! काग जी एक तरफ हो गए। भगवान् से अपने भक्त का दु:ख नहीं देखा गया। भगवान् ने गरुड़ से कहा गरुड़ यह बैकुण्ठ नहीं है, यह अयोध्या है। अयोध्या में देव पक्षी का कोई काम नहीं। तुम्हारी यहाँ जरूरत नहीं। तुम अपने धाम को जाओ। भगवान् का निर्देश पालन करते हुए गरुड़ अपने धाम को चले गए। भुशुण्डी जी पुन: भगवान् की बाल क्रीड़ा में मग्न रहे। भगवान् ने देखा कि इस गरुड़ ने मेरे भक्त का अपमान किया है। इस अपमान का बदला तभी पूर्ण हो सकता है जब यह स्वयं इस भक्त के चरणों में आकर नतमस्तक हों। जिसको इसने नीच समझा है, चाण्डाल समझा है, जब तक उसके चरणों में आ करके गिरेगा नहीं तब तक हम इसको कभी क्षमा नहीं करेंगे।

भगवान् की यह प्रणाली है। ऐसे उन्होंने दुर्वासा के लिए किया था। जिस अम्बरीष पर दुर्वासा ने क्रोध किया भगवान् का जब चक्र उठा तो जब तक दुर्वासा उसी अम्बरीष के चरणों में आकर नहीं गिरे तब तक उनको चक्र से मुक्ति नहीं मिली। भगवान् के उस संकल्प का परिणाम हुआ कि महात्मा गरुड़ को मोह हुआ। उस मोह को दूर करने के लिए वे नारद के पास गए, ब्रह्मा के पास गए, शंकर के पास गए और शंकर जी ने ध्यानस्थ हो करके सारा रहस्य समझ लिया। उन्होंने कहा कि हाँ, हाँ तुम्हारा मोह एक ही जगह दूर हो सकता है। कहाँ? कहा कि उत्तर दिशा में नीलगिरी पर्वत है जिस पर भुशुण्डी जी रहते हैं, वहाँ तुम जाओ –

तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला।।

(रा0 7/62–2)

राम कथा सो कहइ निरंतर।

(रा0 7/62–4)

वह सदा राम की कथा कहा करता है। राम के तत्त्व का वह ज्ञाता है। उसके पास जब तुम जाओगे तब तुम्हारा मोह दूर हो जाएगा। मरता क्या न करता। भगवान् शंकर के यहाँ भी जब शरण नहीं मिली तब गरुड़ जी वहाँ से चल करके भुशुण्डी जी के पास आए। ये महाज्ञानी हैं, इनमें मोह भ्रम नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय कि व्यक्ति अपनी ज्ञान साधना के द्वारा अपने मोह और भ्रम को तो दूर कर लेता है, अविद्या माया से तो मुक्त हो जाता है लेकिन विद्या से मुक्त नहीं होता। विद्या माया प्रभु की इच्छा शक्ति है। प्रभु की इच्छा शक्ति से कौन मुक्त हो सकता है? आगे भुशुण्डी जी ने एक जगह अपने चरित्र (जीवनी) को बताते हुए जिसमें गरुड़ के लिए भी संकेत है, कहा है–

हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या।
प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या।।
ताते नास न होइ दास कर।
भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर।।

(रा0 7/79–2,3)

हे पक्षीराज! प्रभु के भक्त को अविद्यां माया नहीं सताती। आप घबराएं न। उसको तो प्रभु के इशारे से विद्या माया ही पकड़ती है। जिसको विद्या माया पकड़ती है उसको बुरे रास्ते पर नहीं ले जाती अच्छे रास्ते पर ले जाती है। जैसे तुम्हें मोह हुआ था तो तुम अपना मोह दूर करने के लिए ऋषियों की तलाश न करते बल्कि यही समझ कर कि राम एक सामान्य मानव हैं, उनका तिरस्कार करने लगते लेकिन ऐसा नहीं हुआ। संशय होते ही तुम्हें जिज्ञासा हुई कि राम कौन हैं, मैं जान लूं। यह विद्या माया की प्रेरणा थी जो तुम नारद के पास गए, ब्रह्मा के पास गए, शंकर के पास गए और उसी की प्रेरणा से तुम मेरे पास पहुँच गए–

प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या।

(रा0 7/79–2)

विद्या माया जिसे व्यापती है, वह भक्त का अपमान नहीं करती तथा भक्त का नाश भी नहीं करती –

तातें नास न होइ दास कर।

(रा0 7/79–3)

नाश का स्वरूप क्या है? भगवान् ने गीता में बताया है –

संङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

(गीता 2/62,63)

वहाँ पर स्मृति नष्ट हो जाती है। यह अविद्या माया का परिणाम है लेकिन जब विद्या माया व्यापती है तो उसकी स्मृति को भ्रंश नहीं करती बल्कि उसकी स्मृति को और तीव्र करती है और यह चाह उत्पन्न कर देती है कि मैं यह जानूं कि परमात्मा कौन है? सत्य क्या है? उसकी भेद भक्ति और दृढ़ हो जाती है, बढ़ती है। वो परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को समझने की रुचि लेकर के साधना में प्रवृत्त होता है। यह विद्या माया की महिमा है और वही विद्या माया आपको व्यापी है, ऐसा इसमें संकेत है इसलिए आप मेरे पास आए। आखिर में गरुड़ ने स्वीकार किया कि भगवन् –

जौं नहिं होत मोह अति मोही।
मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ।।

(रा0 7/69–4)

यदि मुझे मोह न हुआ होता तो मैं आप जैसे महापुरुष को कैसे मिल पाता?

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई।

(रा0 7/69–5)

मैं भगवान् के चरित्र को कैसे सुनता? गरुड़ जी ने कहा कि आज मैं अपने मोह को सार्थक मानता हूँ, उपयोगी मानता हूँ। अपने मोह को मैं कोटि–कोटि

धन्यवाद देता हूँ। यदि मोह न हुआ होता तो आप न मिलते –

जो अति आतप ब्याकुल होई।
तरु छाया सुख जानइ सोई।।

(रा0 7/69-3)

उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति अत्यन्त धूप से व्याकुल होता है वही वृक्ष की छाया का सुख जानता है। महल में रहने वाले को वृक्ष की छाया के सुख का क्या पता? इसी रूप से यदि मुझे मोह न हुआ होता तो मैं आपकी महिमा न जानता। गरुड़ जी ने कहा –

जानेहु सदा मोहि निज किंकर।
पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर।।

(रा0 7/125-10)

बार-बार भुशुण्डी के चरणों में शीष रखकर वही गरुड़ जी कहते हैं कि आप मुझे अपना किंकर समझना, अपना सेवक समझना और अपना शिष्य समझना। शिष्यत्व को स्वीकार किया। यह बात गरुड़ जी ने ही कही है भुशुण्डी जी के प्रति –

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई।।

(रा0 7/93-5)

गुरु के बिना कोई भी व्यंक्ति संसार सागर से पार नहीं जा सकता, कितना बड़ा ज्ञानी भी क्यों न हो। चाहे वह ब्रह्मा और स्वयं शिव ही क्यों न हो। प्रभो! आपकी शरण में आने से ही मेरा मोह दूर हुआ है इसलिए आप मेरे गुरु हैं। आप मुझ पर कृपा करें। बार-बार प्रार्थना करके फिर गरुड़ वहाँ से जाते हैं।

मैं आपको यह कहानी इसीलिए बताई कि भगवान् की जो माया है वह ज्ञानियों को भी पकड़ लेती है लेकिन भक्त को नहीं पकड़ती। क्यों नहीं पकड़ती? इसके लिए भुशुण्डी जी बता रहे हैं –

भुशुण्डी गीता -81

भगतिहि सानुकूल रघुराया।
ताते तेहि डरपति अति माया।।

(रा0 7/116–5)

कि भक्त जो है वह भक्ति युक्त होता है और प्रभु भक्ति के सदैव अनुकूल रहते हैं। भक्ति प्रभु की प्रेयसी है इसलिए उसे प्राणेश्वरी कहते हैं। वह प्रभु की प्राणेश्वरी है। देवी भागवत में बताया गया है कि परमेश्वर की दो शक्तियां हैं एक उनकी बुद्धि स्वरूपा शक्ति है और दूसरी उनकी प्राण स्वरूपा शक्ति है। परमात्मा की ज्ञानात्मिका शक्ति का नाम दुर्गा है, वह बुद्धि स्वरूपा है और परमात्मा की प्राणात्मिका शक्ति का नाम राधा है, वह भक्ति स्वरूपा है।जब तक इन दोनों शक्तियों का अनुग्रह प्राप्त न हो जाए तब तक जीव परमेश्वर को प्राप्त करने में सक्षम नहीं होता। यहाँ पर भुशुण्डी जी ने बताया कि जहाँ तक ज्ञानी की बात है वह पुरुष भाव को प्राप्त हुआ होता है। माया उसको देखते ही दबोच लेती है। जहाँ अवसर मिला तहां उस पर सवार हुई लेकिन भक्ति का आश्रय लेने वाला साधक अपने को प्रभु के हवाले कर देता है। भक्ति का आश्रय लेने के नाते माया उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। माया उसके निकट नहीं जाती, माया परमात्मा की शक्ति है। दोनों माया और भक्ति जीव और ईश्वर के मध्य में सोहती हैं। यही भक्ति जीव का उद्धार करती है। जब जीव भक्ति का आश्रय लेता है तो माया का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भक्ति के शरण में जाने से वो माया मुक्त हो जाता है इसलिए –

राम भगति निरुपम निरुपाधी।
बसइ जासु उर सदा अबाधी।।

(रा0 7/116–6)

भुशुण्डी जी घोषणा करते हैं कि राम की भक्ति जो है वह निरुपम निरुपाधि है। निरुपम माने उसकी उपमा (बराबरी) का कोई दूसरा नहीं है। निरुपाधि

माने उपाधि रहित। उपाधि माने व्यवधान। किसी प्रकार का व्यवधान नहीं है वहाँ पर और जिसके हृदय में बसती है उसका जीवन सदा आबाद होता है। किसी प्रकार की व्याधी उसके जीवन में नहीं आती। माया रूपी व्याधी वहाँ उपस्थित हो ही नहीं सकती।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई।
करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।

उसको देखते ही माया संकुचित हो जाती है। उसके ऊपर अपना कोई प्रभुत्व नहीं जमा पाती। जो भक्ति की शरण में चला गया वह माया के प्रवाह से बच गया। भक्ति की शरण में जाना क्या है?

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

(गीता 7/14)

जो भगवान् की शरणागति स्वीकार कर लिया वही मेरी माया से पार जाता है। भगवान् की शरणागति ही भक्ति है। सर्वरूप में भगवान् को स्वीकार कर लेना भक्ति का स्वरूप है। जिसने यह स्वीकार कर लिया कि मेरे प्रभु ही सर्वरूप में हैं उनके लिए कहीं भी कोई व्यवधान नहीं है।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भगवान् की माया से मुक्त होने के लिए भगवान् की भक्ति की शरण एक मात्र सहारा है। ज्ञान से आप अविद्या से मुक्त होते हैं और भक्ति से आप विद्या से मुक्त होते हैं, ये दोनों अलग–अलग शक्तियां हैं परमात्मा की। शास्त्रकारों ने बताया कि यदि ज्ञान हो जाए तब भी भक्ति का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए। आगे तुलसीदास जी लिख रहे हैं –

अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने।।

(रा0 7/119–7)

ऐसा विचार करके जो सयाने लोग हैं वो मुक्ति का त्याग करके भक्ति के पीछे

लग जाते हैं, भक्ति में विमुग्ध हो जाते हैं। जो भक्ति में मुग्ध हो गया वह तर गया, वह प्रभु को प्राप्त कर गया। जो ज्ञान में रत है वह प्रभु को पा लेगा? तुलसीदास जी ने कहा कि असम्भव है। उसे आत्मानुभूति तो होगी लेकिन परमात्मानुभूति नहीं होगी। आत्मानुभूति और परमात्मानुभूति में भेद है। रामायण, गीता, उपनिषद्, वेद तथा श्रीमद्भागवत में भी यह बात बताई गई है कि ज्ञान द्वारा आत्मानुभूति होती है परमात्मानुभूति नहीं होती। परमात्मानुभूति के लिए तो कवेल एक मात्र साधन है परमात्मा की भक्ति (शरणागति), इसके सिवाय कुछ नहीं। तुलसीदास जी ने इसी क्रम में लिखा है–

जे असि भगति जानि परिहरहीं।
केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं।।
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी।
खोजत आकु फिरहिं पय लागी।।

(रा0 7/115–1,2)

कितनी सुन्दर बात कही। उन्होंने कहा कि भक्ति और ज्ञान के इस रहस्य को जान करके भी जो व्यक्ति भक्ति का त्याग करके केवल ज्ञान के ही पीछे लगा रहता है वह जड़ है, समझदार नहीं है। वह अपने घर में कामधेनु का त्याग करके दूध के लिए आकड़ा (मदांर) ढूढ़ते फिरता है इसलिए भक्ति की बड़ी महिमा है। आगे उन्होंने बड़ा ही सुन्दर रूपक बताया है –

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन।।

(रा0 7/116 (ख)

ज्ञान और भक्ति का भेद तुम सुनो। जिसको सुन कर राम के चरणों में अविछिन्न भक्ति प्राप्त होगी। वो भेद दो रूपों में उन्होंने व्यक्त किया है। भक्ति को मणि और ज्ञान को दीपक बताया है। ज्ञान दीपक की व्याख्या योग की साधना में निपुण योगी ही यथार्थ रूप में कर सकता है। इतना सुन्दर रूपक

है। वहाँ पर जो ज्ञान की सप्त भूमिकाएं हैं उन सप्त भूमिकाओं का पूरा विवेचन है और उसके पश्चात् ज्ञान और उसके प्राप्तव्य को बताया है।

ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? योग से। योग, ज्ञान और उनका प्राप्तव्य, इन तीनों की व्याख्या के पश्चात् भुशुण्डी जी ने भक्ति की व्याख्या की है। भक्ति का स्वरूप क्या है? उसको कैसे पाया जाए? उसका फल क्या है, यह बताया है। ज्ञान का स्वरूप क्या है? ज्ञान कैसे पाया जाए? उसका फल बताया है। इन दोनों का विवेचन किया है। ज्ञान को दीपक बताया है और ज्ञान दीपक को जलाने के लिए योगाग्नि की जरूरत बताई–

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।

(रा0 7/117(क)

यह पूरी लम्बी व्याख्या हे जो आज तो हो नहीं सकती। इसी रूप से भक्ति मणि की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा –

पावन पर्बत बेद पुराना।
राम कथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ग्यान बिराग नयन उरगारी।।

(रा0 7/120–13,14)

वहाँ भी सुमति की जरूरत है। वहां भी ज्ञान–वैराग्य रूपी नेत्रों के बिना अन्धा आदमी भक्ति रूपी मणि को नहीं देख पायेगा। मणि में स्वत: प्रकाश होता है लेकिन अन्धे के लिए तो नहीं है। अन्धे के लिए जब सूर्य का प्रकाश ही नहीं है तो मणि वपुरे की क्या गति है। ज्ञान विराग रूपी यदि नेत्र हों –

भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगति मनि सब सुख खानी।।

(रा0 7/120–15)

तो उसको भक्ति रूपी मणि उपलब्ध हो जाती है। ज्ञान रूपी दीपक के लिए –**सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।** सात्त्विक श्रद्धा रूपी धेनु की जरूरत है और भक्ति रूपी मणि के लिए ज्ञान–वैराग्य रूपी नेत्र और सुमति रूपी कुदाली की जरूरत है। कहने का अभिप्राय कि ज्ञान–वैराग्य रहित भक्ति नहीं है और भक्ति रहित कही ज्ञान भी नहीं है। प्रधानता एक की हुआ करती है। तुलसीदास जी ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा–

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।

(रा0 7/100(ख)

वेद का सिद्धान्त क्या है? उन्होंने कहा कि ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति। तुलसी का मत है कि ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति ही श्रुति सम्मत है। यह वेद का सिद्धान्त है और जो लोग इस रास्ते पर नहीं चलते वे अपनी अज्ञानता बस अनेकों प्रकार के पंथों की कल्पना करते हैं। हमें अनेकों प्रकार के पंथों की कल्पना न करके गोस्वामी जी द्वारा प्रदर्शित ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति पथ पर चलने की कोशिश करनी चाहिए। यह मार्ग प्रशस्त है, इसमें कोई बाधा नहीं है –

परम प्रकास रूप दिन राती।
नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।।

(रा0 7/120–3)

इसमें किसी प्रकार के प्रपंच की जरूरत नहीं है लेकिन ज्ञान में बहुत प्रपंच हैं। भक्ति का साधन सुगम है ज्ञान का पंथ अगम है।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा।
परत खगेस होइ नहिं बारा।।

(रा0 7/119–1)

वह कृपाण की धारा है। यदि मिल भी गया तो क्या हुआ?

जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई।
सो कैवल्य परम पद लहई।।

(रा0 7/119-2)

यदि वह निर्विघ्न पूरा भी हो जाए तो कैवल्य की प्राप्ति है –

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं।
अनइच्छित आवइ बरिआईं।।

(रा0 7/119-4)

लेकिन यदि प्रभु की भक्ति में लग जाओ तो मुक्ति बेचारी अपने आप पीछे–पीछे दौड़ती आती है इसलिए उन्होंने कहा –

भोजन करिअ तृपिति हित लागी।
जिमि सो असन पचवै जठरागी।।

(रा0 7/119-9)

जैसे तृप्ति के लिए आप भोजन करते हैं और उस भोजन को जठराग्नि स्वतः पचा देती है इसी प्रकार से यदि आप भक्ति के लिए प्रयत्न करेंगे तो मोक्ष अपने आप हो जाएगा। उसके लिए आपको कुछ नहीं करना पढ़ेगा।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि भक्ति और ज्ञान का जो भेद है, इसको गोस्वामी जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। विषय बहुत लम्बा है, महीनों का है। तीन दिन में जितनी बातें बता दीं इतनी ही बहुत हैं। इन पर मनन कीजिए। इतना याद रखिए, इस सिद्धान्त में ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति ही जीवन का एक मात्र श्रेष्ठतम अवलम्बन है। ज्ञान के द्वारा आप मोह से मुक्त होंगे, वैराग्य के द्वारा भोग से मुक्त होंगे और भक्ति के द्वारा आप विद्या माया से मुक्त होकर प्रभु को प्राप्त कर लेंगे। यह सरल सा सिद्धान्त है क्योंकि ज्ञान आपको मोह मुक्त तो कर देगा लेकिन माया मुक्त नहीं कर सकता। मोह मुक्त होने पर भी व्यक्ति माया के प्रवाह में पड़ जाता है। मोह मुक्त होने के लिए ज्ञान है और माया मुक्त होने के लिए भक्ति इसलिए

ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति ही श्रेष्ठतम साधन है, ऐसा गोस्वामी जी का मत है और मेरा भी मन्तव्य है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपने विचारों को यहीं विश्राम दूंगा। आप सभी को बहुत–बहुत आशीर्वाद। प्रभु से प्रार्थना करूंगा कि वें आपको अपनी करुणा का भाजन बनावें जिससे आप लोग उनके द्वारा बताये हुए ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति पथ के पथिक बन सकें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विश्राम देता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर् पिंजौर (हरियाणा)
पिन-134102
फोन :-01733-266170

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
28-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-110032
फोन :-011-22821660,22821943

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड़, लुधियाना
फोन :-0161-2700141,2706231

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
(अंग्रेजी मीडियम)
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड, लुधियाना
फोन :-0161-2666406

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड, उधमपुर (जे.के.)
फोन :-01992-271080

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय
योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड.
यमुनानगर-135001(हरियाणा)
फोन:- 01732-297046

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चककिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही,
वाराणसी (उ0प्र0)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड.
भूपतवाला, हरिद्वार (उ0प्र0)
फोन:-01334-261018

Pt. Ram Prakash Pathak
Brahmrishi Mission School
Baba Fateh Singh Nagar,
Phagwara
Phone : 01824-270888

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A, Chandigarh
Phone : 0172-2725390, 2540128

Brahmrishi Mission School
Jarar, Devvan, Piplaage
Bhunter, Kullu (H.P.)
Ph. 01902-265518,266043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road,
Opp. New Water Works,
ABOHAR-152116
Ph. : 01634-229615, 230615

Brahmrishi Misson
278, Heston Road, Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0208-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street,
East Kitchener, Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246, North Mantua Street, Kent,
Ohio- 44240, U.S.A..
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717, Loosduinseweg,
2571 AM-Denhaag, Nederland,
Ph.: 070-3620961

हमारे प्रकाशन

✤ शक्ति तत्त्व बोध ✤ आपकी अपनी बात ✤ गीता ज्ञान विज्ञान योग
✤ श्रीहनुमत् विनय पच्चीसी ✤ श्री चण्डिकाशतक ✤ श्री श्यामशतक
✤ मानस में धर्मरथ ✤ रामो विग्रहवान् धर्मः ✤ मानस महाकाव्य में नारी
✤ गीता तत्त्व बोध ✤ क्या वर्ण–व्यवस्था अभिशाप है? ✤ राम नाम महिमा
✤ मानस के मोती ✤ जीवन विज्ञान ✤ भारत की आत्मा ✤ योगांकुर ✤ साधना सूत्र
✤ गीता कर्मविज्ञान ✤ समाधान ✤ तत्त्व चिन्तन ✤ सन्त सन्देश
✤ भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र) ✤ राम और रामायण ✤ क्रियायोग
✤ मानव पतन में हेतु ✤ योग पथ ✤ विश्व को हिन्दुओं का योगदान
✤ मानस में वैदिक सिद्धान्त ✤ सन्त लक्ष्ण ✤ श्री हनुमत हृदय
✤ संस्कृत भाषा का महत्व ✤ ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति ✤ सहज समाधि भली
✤ ब्रह्मविद्या विज्ञान–प्रथम ✤ ब्रह्मविद्या विज्ञान–द्वितीय ✤ नारी ! तुलसी की दृष्टि में
✤ शिव तत्त्व बोध ✤ विश्व की समस्याओं का हल–अध्यात्मवाद ✤ हिन्दू धर्म सूत्र
✤ गीतोक्त बुद्धियोग ✤ चंडी दी वार (भगवती की स्तुति) ✤ काव्य सुधा
✤ श्री शिव शतक ✤ मानस में नवधा भक्ति ✤ महात्मा भरत ✤ हनुमत पंच रत्न
✤ राष्ट्र का मुखिया कौन ?(वज्रसूचिकोपनिषद् के आधार पर तात्त्विक विश्लेषण)
✤ श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय १ एवं २)
✤ श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ३ एवं ४)
✤ श्रीमदभगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ५ एवं ६)
✤ श्रीमदभगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ७ एवं ८)
✤ वैदिक सनातन धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या
✤ शास्त्र और श्रद्धा (एक तात्त्विक विश्लेषण) ✤ जन्म से मोक्ष तक
✤ वैदिक विज्ञान के स्वर्णिम अध्याय ✤ भुशुण्डी गीता ✤ श्रीहनुमत् चरित्र
Science of Stable Wisdom • The Science of *Pranav (om)* *(Commentary on Mandookyopanishad)* • How to be a Yogi • Towards Divinity • Yoga for life • The Hindu & its way of life • Essence of the Gita • Basic Principles of Yoga • Essays on the Kram Yoga • Lord Hanuman-Our Ideal • Meditation Technique • Science of the Absolute Knowledge * The Nature of Sacrifice *(Commentary on Ishopanishad)*

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733-266170